

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज**
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

श्रीतुलसीपीठसौरभ

(मासिक पत्र)

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्यु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्॥

वर्ष १३	जनवरी, २००९ (४, ५ फरवरी को प्रेषित)	अंक-५
संस्थापक-संरक्षक श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज संरक्षक एवं प्रकाशक डॉ० कु० गीता देवी (पूज्या बुआ जी) प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट सम्पादक आचार्य दिवाकर शर्मा 220 के, रामनगर, गाजियाबाद-201001 दूरभाष-0120-2712786, मो०- 09971527545 सहसम्पादक डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' डी-255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद-201001 दूरभाष : 0120-2767255, मो०-09868932755 प्रबन्ध सम्पादक श्री ललिता प्रसाद बड़थवाल सी-295, लोहियानगर, गाजियाबाद-201001 0120-2756891, मो०- 09810949921 सहयोगी मण्डल (ये सभी पद अवैतनिक हैं) डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव, 09971149779 श्री दिनेश कुमार गौतम, 09868977989 श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट, 09810719379 श्री अरविन्द गर्ग सी.ए., 09810131338 श्री सर्वेश कुमार गर्ग, 09810025852 डॉ० देवकराम शर्मा, 09811032029	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र : श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन, पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०-485331 07670-265478, 05198- 224413 वसिष्ठायनम् - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल) दूरभाष-01334-260323 श्री गीता ज्ञान मन्दिर भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात) दूरभाष-0281-2364465 पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता आचार्य दिवाकर शर्मा, 220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001 दूरभाष-0120-2712786, मो०- 09971527545	

रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय	-	३
२.	वाल्मीकि रामायण सुधा (४५)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	४
३.	श्रीमद्भगवद्गीता (७६)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	८
४.	सकल अमानुष करम तुम्हारे	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१०
५.	काका विदुर (कविता)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१२
६.	गुरुवर दर्शन मंगलकारी	श्री विशेष नारायण मिश्र	१३
७.	भरतहिं त्याग धरम धन खानी	श्री शिव कुमार सिंह 'शिवम्'	१६
८.	भारतीय जीवनमूल्य	डा० धर्मपाल मैनी	१७
९.	केवट की भक्ति	डा० जगदीश प्रसाद गुप्त	२०
१०.	गुरुदेव का जनमदिन	डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव	२३
११.	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी.....	-	२३
१२.	शंखध्वनि विज्ञान	पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत	२४
१३.	श्रीमद्भागवतकथा (रामेश्वरधाम)	आचार्य दिवाकर शर्मा-डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'	२७
१४.	व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक	-	३२

सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनवाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' से अभिप्राय धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें।

सदस्यता सहयोग राशि

संरक्षक	११,०००/-
आजीवन	५,१००/-
पन्द्रह वर्षीय	१,०००/-
वार्षिक	१००/-

-सम्पादकमण्डल

यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-१७ तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय २२० के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

हम अपने से दूर हैं और अपनों से सुदूर

आज के भौतिकवादी वातावरण में अध्यात्म अथवा धर्म शब्द मानव से इतने दूर होते जा रहे हैं कि प्रगति का पथ समझाने वाले और समझने वाले महानुभाव वैदिक परम्परा तथा पौराणिक मान्यताओं की चर्चा सुनना भी आवश्यक नहीं मानते। वेदादि धर्मशास्त्रों में जिन वैज्ञानिक तथ्यों तथा मान्यताओं की खोज हमारे पूर्वजों ने लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व की थी उसको देखते हुए भी नहीं देखते भौतिकवादी लोग। अंग्रेजी का रिसर्च शब्द यद्यपि 'पुनः खोज' के अर्थ को द्योतित करता है किन्तु इसके मूल में यदि ऋष्यर्चा (ऋषीणाम् अर्चा अर्थात् ऋषियों की पूजा) का भाव समझ लिया जाए तो हमें पूर्ववर्ती साहित्य को पढ़ने में सहायता मिलेगी। हमारे पास रिसर्च करने के न तो साधन हैं और न विषय। मनुष्य मस्तिष्क का अधिकांश प्रतिशत चिन्तन तो हमारे ऋषिमुनियों आचार्यों और विद्वानों ने पहले ही कर लिया था।

आज हम अपने से और अपनों से इतने दूर हैं कि आचार एवं विचार दोनों में नवीनता का बलात् आधान करके सब कुछ चौपट करने पर तुले हैं। प्रातः काल के जागरण से निशाकाल के शयन तक की सम्पूर्ण दिनचर्या का सविस्तर शास्त्रों में मानवहित को ध्यान में रखकर उल्लेख किया गया है किन्तु मनोराज्य के धनी-मानी लोग उसमें अपने अपने वार्तिक लगाते हैं। जो शुद्धता से धर्माचरण करते हैं वे भलीभाँति जानते हैं कि धर्माचरण में भ्रमप्रमाद आलस्य आदि शत्रुओं को मारते रहना पड़ता है। फिर भी धर्माचरण का जो सुख है वही शाश्वत सुख है। इसके विपरीत धर्माचरण न करने वाले जन्तुओं के ये कुतर्क प्रायः देखे-सुने जाते हैं कि परिस्थितिवशात् हमने अपना नियम छोड़ दिया। धैर्य की परीक्षा तो होती ही आपद्धर्म में है। आज के भौतिकवाद में आकण्ठनिमग्न रहने वाले लोग आचार-विचार की तिलांजलि की हानि प्रत्यक्ष देख रहे हैं उनको अनेक प्रकार के भीषण रोग घेर लेते हैं। असाध्य रोगों के उपचार में घर-बाहर नष्ट होते हैं। जीवन तक से हाथ धोना पड़ता है। दूसरी ओर सद्विचारों में विष घोलने वाले तथा कुत्सित विचारों को धारण करने वाले लोगों से समाज और राष्ट्र की कितनी हानि होती है इसका अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि वैचारिक प्रदूषण ने आज विश्व को विनाश के कगार पर ले जाकर रख दिया है। आतंकवाद भी दुर्विचारों का समूह ही तो है।

भारतीय मनीषा में अन्नमयं हि सौम्यं मनः प्रसिद्ध है अर्थात् जैसा अन्न वैसा मन होता है। आज जल-अन्न-फल आदि तक दूषित हैं। शासन किसी विकास का दिवास्वप्न देख रहा है और विनाश लीला सुरसा की भाँति आ रही है। जो योजनाएँ कागजों पर बन रही हैं उनमें वस्तु की मात्रावृद्धि की चिन्ता है गुणवृद्धि की नहीं। इसी का दुष्परिणाम यह हो गया है कि आज स्वदेशी वस्तुओं का अभाव है। विदेशी वस्तुओं का प्रभाव है। संक्षेप में कहें तो हम अपने ही देश में पराये हो गए हैं। एक बार सबको मिलकर पुनः सोचना विचारना होगा कि यदि हम विनाश विकास के विवाद में पड़े रहे तो धर्म विरोधी शक्तियाँ हमारी और भयंकर हानि करेंगी। अब भी समय है सबके चेतने का और विपरीत दिशा में जाने वाले समाज को पुनः भारत के वास्तविक वैभव की ओर लाने का। इस अपेक्षा की पूर्ति के लिए हम सबको मनवाणी और कर्म की एकता करके ईश्वराराधन, ईश्वर-विश्वास, राष्ट्रसेवा, दीनहीन की सहायता, आदि सद् गुणों का निष्ठापूर्वक संग्रह करना चाहिए। नमो राघवाय।

आचार्य दिवाकर शर्मा

प्रधान सम्पादक

(गतांक से आगे)

वाल्मीकिरामायण सुधा (४५)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

रावण के हाथों भी मरना है या राम के हाथों मरना है दोनों के द्वारा यदि मरना है तो राम के हाथ मरना अच्छा है रावण के हाथों नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज लिखते हैं-

उभय भाँति देखेसि निज मरना।

तब ताकेसि रघुनायक सरना।।

मारीच ने कहा ठीक है, चलो। रावण और मारीच दोनों पहुँच रहे हैं। मारीच स्वर्णमृग बन गया और सीता जी के पास भ्रमण करने लगा। ये माया की सीता हैं क्योंकि राघवेन्द्र जी की मूल सीता तो किसी को देखती ही नहीं हैं। उनके नेत्र रामजी के सिवा किसी पर नहीं जाते। इसलिए कहीं एक चौपाई बड़ी सुन्दर है। रामजी जब सीताजी के वियोग में विलाप कर रहे हैं तब गोस्वामी जी महाराज कहते हैं-

हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी।

तुम देखी सीता मृगनयनी।।

यहाँ मृगनयनी शब्द का प्रयोग क्यों किया? भगवान् झूठ नहीं बोलते। यहाँ भगवान् वास्तविक सीता जी के लिए नहीं कह रहे हैं। वे तो कह रहे हैं कि हे खग मृग, हे मधुकर श्रेणी यह बताओ कि क्या तुमने मृगनयनी सीता को देखा है। मृगनयनी माने क्या है? मृग के समान नेत्रों वाली नहीं अपितु सोने के हरिण पर जिसके नेत्र चले गये ये ऐसी माया की सीता को तुमने देखा है? यही तो मानस जी का आनन्द है। रामजी ने वास्तविक सीताजी की बात ही नहीं कही। सीताजी ने मृग को देखा और अपने पास बुलाने लगीं-

आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते।

आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज।।

सीता जी बोलीं- आर्यपुत्र! अपने भाई के साथ आइये शीघ्र आइये। यह देखिए कितना सुन्दर मृग है। लक्ष्मण जी ने कहा- नहीं। यह मारीच की माया होगी। सीता जी ने उन्हें बोलने के लिए मना किया। वे बोलीं-

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः।

आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति।।

आर्यपुत्र! यह मृग मेरे मन को चुरा रहा है इसे लाइये यदि जीवित न मिले तो इसे मारकर लाइये इसकी छाल पर बैठकर भजन करूँगी। श्रीराम ने पूछा ऐसा आपने क्यों कहा? तब सीता जी ने कहा कि लगभग २६ वर्ष तक निरन्तर रामनाम का जप किया है। चमड़ी पवित्र हो गयी है अतः इस पर बैठकर भजन करने में बहुत मन लगेगा। लक्ष्मण जी ने मना किया पर राम जी नहीं माने और बोले तुम सीताजी की रक्षा करो यदि यह मारीच है तो भी इसका वध करना अनिवार्य है। यदि यह मारीच है तब भी और राक्षस है तब भी इसका मारना ठीक है। भगवान् राम मारीच को मार रहे हैं और उसने रामजी के स्वर में-

स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम्।

सदृशं राघवस्येव हा सीते लक्ष्मणेति च।।

रावण के बताये हुए उपाय को काम में लाते हुए मारीच ने हा सीते! हा लक्ष्मण! कहकर पुकारा। वास्तव में उसने नहीं बोला वह तो रामजी के ध्यान में था रामाकारवृत्ति होने के कारण राम जी का स्वर उसके मुख से निकला। सीता जी ने यह स्वर सुना और वे लक्ष्मण जी से कह रही हैं कि तुम रामजी के पास चले जाओ। लक्ष्मण जी नहीं जा रहे हैं फिर

सीताजी को क्रोध आया। क्रोध आने का मूल यह है कि सीताजी जानती हैं (माया की सीता) कि यदि लक्ष्मण जी रामजी के पास नहीं जायेंगे तो उनका हरण नहीं होगा और यदि सीताजी का हरण नहीं होगा तो राक्षसों का वध नहीं होगा फिर अवतार का प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इसलिए किसी भी मूल्य पर लक्ष्मण जी का यहाँ रहना उचित नहीं होगा। इसका पारमार्थिक कारण भी बहुत अच्छा है। सीता जी माया की सीता हैं। सीताजी जानती हैं कि यहाँ लक्ष्मण जी का रहना ठीक नहीं है। लक्ष्मण माया की शरण में रहेंगे तो इनकी हानि होगी। इनको तो मायापति रामजी की शरण में चले जाना चाहिए इससे इनका व्यक्तिगत लाभ होगा। सीता जी के कहने पर भी जब लक्ष्मण जी नहीं गये तो माया की सीता जी ने क्षुब्ध होकर कहा-

**सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्।
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे।
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते।।**

हे लक्ष्मण! तुम मित्र रूप में अपने भाई के शत्रु हो। सीता जी आगे कहती हैं तुम दोनों अकेले अकेले रहोगे तो ठीक नहीं रहेगा अतः यदि तुम रामजी के साथ रहोगे तब रावण तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा अतः तुम रामजी के पास चले जाओ। इसका अर्थ भी बहुत सुन्दर है टीकाकार इसको ठीक से नहीं समझ सके। रामायण शिरोमणिकार ने कुछ कहा तो इतना भयंकर कहा कि समझ में नहीं आता क्या कहा। वास्तव में अर्थ तो यह है कि इस अवस्था में भी तुम रामजी की शरण में नहीं जा रहे हो अतः यह तो निश्चित ही है किंतु रावण का विनाश चाह रहे हो? यदि राम जी के पास तुम जाओगे तभी तो रावण मेरा हरण करेगा और तभी रावण का विनाश हो सकेगा। सीता जी का तात्पर्य यह है कि यदि तुम यह चाहते हो कि मुझे निमित्त मानकर रावण का विनाश हो जाय तो निश्चित रूप से अपने भैया राम जी के

पास चले जाओ जिससे सुनसान वातावरण देखकर रावण मेरा हरण कर ले। कितना ललित अर्थ है। अतः जल्दी करो। गोस्वामिपाद कहते हैं-

मरम वचन सीता जब बोली।

हरि प्रेरित लछमन मति डोली।

लक्ष्मण! मेरी बात मान लो और चले जाओ। क्योंकि मैं तुम्हारी भाभी माँ नहीं हूँ वे अग्नि में चली गई हैं। मैं माया की सीता हूँ। यदि तुम नहीं जाओगे तो रावण मेरा हरण नहीं करेगा यदि मेरा हरण नहीं होगा तो रावण का मरण नहीं होगा। यदि राक्षसों का मरण नहीं होगा तो राम के अवतरण का प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। जल्दी करो जल्दी चले जाओ।

लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्।

व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते।।

मैं जानती हूँ कि तुम्हारे बड़े भैया ने तुम्हें मेरी रक्षा में छोड़ रखा है। मेरे लिए लोभ के कारण तुम राघव के पास नहीं जा रहे हो। मुझे भी यह लगता है कि तुम्हें व्यसन अच्छा नहीं (अप्रिय) लग रहा है पर एक बात बताओ कि क्या तुमको अपने भैया के प्रति प्रेम नहीं है? यहाँ काकुवक्रोक्ति है। यदि तुम्हें अपने बड़े भैया पर प्रेम है और तुम्हारे बड़े भैया ने राक्षसों को मारने का संकल्प लिया है तो तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उनके संकल्प में सहायता करो और उनके पास जाओ तब रावण मेरा हरण कर सकेगा। लक्ष्मण जी फिर कहते हैं कि मैं नहीं जाऊँगा। सीताजी फिर कहती हैं कि तुम बहुत भूल कर रहे हो। सीता जी फिर कठोर वाक्य कहती हैं-

अनार्यकरुणारम्य नृशंस कुलपांसन।

अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्।

अब थोड़ा डाँटती हैं। लक्ष्मण! तुम अनार्यों (दुष्टों) पर कृपा क्यों कर रहे हो? तुम अपने स्वरूप का विचार करो। तुम दयाहीन राक्षसों के कुल को धूल में मिलाने वाले हो। अपने स्वरूप को तुम भूल

गये हो। तुम्हारे रहते हुए शेषावतार में तुम्हारी बेटी सुलोचना को इसी रावण का बेटा (मेघनाद) घसीट कर ले गया था फिर भी तुम उस पर कृपा कर रहे हो। क्या मैं मान लूँ कि राक्षसों का नाश नहीं होगा तो रामजी पर विपत्ति आयेगी तो क्या वह तुमको अच्छी लगेगी? सीता जी बात बिल्कुल ठीक कह रही हैं। सीता जी आगे लक्ष्मण जी से और भी कहती हैं-

सुदृष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुच्छति।

मम हेतोः प्रतिच्छिन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा।।

तन्न सिध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा।

कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम्।।

लक्ष्मण तुम सुदृष्ट हो (शोभना: दुष्टा: यस्मात्) तुम्हारी कृपा से दुष्ट भी शुद्ध हो जाते हैं तुम इतने कृपालु हो तुम जीवाचार्य हो। इसीलिए जीवों का उद्धार करने के लिए तुम रामजी के पीछे पीछे चल रहे हो। अथवा संसार के भार को उतारने वाले मृग की शोभा को देखने वाले राम जी के द्वारा प्रेरित होकर तुम मेरी रक्षा के लिए छिपे हुए हो मेरी रक्षा करना चाहते हो। परन्तु यदि तुम नहीं जाओगे तो तुम्हारा और रामजी का जो प्रयोजन है वह सिद्ध नहीं होगा। तब न तो तुम्हारे और न श्रीराघव के अवतरण का प्रयोजन सिद्ध होगा अतः शीघ्र रामजी के पास चले जाओ। तब लक्ष्मण जी ने हाथ जोड़कर कहा-

अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्रांजलिः स जितेन्द्रियः।

उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम।।

देवि! मैं आपकी बात का जवाब नहीं दे सकता क्योंकि आप मेरे लिए आराध्या देवी के समान हैं। परन्तु मुझे आश्चर्य है कि आपमें जिस महिला का आवेश हुआ है (माया का) उसे इतना तीखा नहीं बोलना चाहिए था। क्योंकि-

न्यायवादी यथावाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया।

धिक् त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशंकसे।।

उस माया को धिक्कार है क्योंकि उसका नाश

तो अब होना ही है। मुझको सीधा सीधा कह देती आपका बहाना लेकर इतना तीखा क्यों कह डाला? प्रेम से मुझे समझा देती। इतना कहकर चारों ओर धनुष की रेखा खींचकर लक्ष्मण जी चल पड़े। बोलो कुमार लक्ष्मण की जय। इस प्रवचन के पश्चात् आपको सीताजी प्रति सन्देह नहीं रहना चाहिए। और लक्ष्मण जी के प्रति यह-

जे गावहिं यह चरित सँभारे।

यह कथा दाम के लिए नहीं रामजी के प्रेम के लिए है। इस प्रकार लक्ष्मण जी ने कहा कि हे लोकपालो! सुनो- मेरी माता जी ने मुझे कभी नहीं डाँटा। माया की सीता ने मुझे कठोर वचन कहे हैं जो मेरे कानों में बाण के समान लगे हैं। भैया रामजी ने मुझे रोका था पर मैं जा रहा हूँ। भगवती सीताजी के रूप में आकर उन्होंने मुझे कहा है, अब मुझे कोई दोष न दे। हे वन देवताओं! सीताजी की रक्षा करना रामजी कहीं दुःखी न हो जायें। लक्ष्मण जी चल पड़े-

चहुँ दिशि रेख खचाड़ अहीशा।

बारहिं बार नाइ पद शीशा।।

बन दिशि देव सौँपि सब काहू।

चले जहाँ रावण शशि राहू।।

लक्ष्मण जी मन में बहुत डर रहे हैं, क्या करें? उन्हें ऐसा धर्मसंकट है। एक ओर तो श्रीराम का डर दूसरी ओर सीता जी अकेली हैं। लक्ष्मण जी राघव जी के पास जा रहे हैं। इधर-

तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः।

अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक्।।

तब रावण ने शून्य देखा और रेखा के बीच सीताजी को देखा। नकली संन्यासी का वेश बनाकर माया की सीता के पास आया। यहाँ एक गम्भीर प्रसंग और सुनिये। रावण के स्वरूप का चित्रण महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार किया है-

श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही।

वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू।।

अर्थात् सुन्दर गेरुए रंग का वस्त्र पहने हुए है, चोटी है, छाता भी लिया है और जूता पहन रखा है। धूमकेतु ने बायें हाथ में डण्डे में कमण्डलु लटकाया हुआ है। यहाँ एक निवेदन है कि चार लोगों ने इस प्रसंग पर हमारे साथ अन्याय किया है। चार टीकाकारों में एक हिन्दी के टीकाकार और तीन संस्कृत के टीकाकार हैं। इन्होंने कहा कि रावण त्रिदण्डी बनकर आया। मैं चेलैज करता हूँ कि यदि चारों यहाँ होते (दुर्भाग्य है कि चारों में से कोई भी नहीं है) तो मैं इस सभा में उनको बुलवाता। गोविन्दराज ने भी कहा, रामायण शिरोमणिकार ने भी कहा, तिलककार ने कहा और बहुत दुर्भाग्य से कह रहा हूँ कि गूढार्थ चन्द्रिका के रचयिता जिन्होंने हमारी दी रोटी खायी, हमारी अयोध्या में ही पढ़े, साधुओं से पढ़कर मणिराम छावनी आदि भिन्न-भिन्न आश्रमों में रहकर रोटी खायी और लिख दिया कि रावण त्रिदण्डी बना था। मैं इन सबको चेलैज करके कहता हूँ कि त्रिदण्ड निरन्तर दायें हाथ में लिया जाता है बायें हाथ में कभी नहीं लिया जाता सभी जानते हैं क्योंकि हम स्वयं त्रिदण्डी हैं और भगवान हमारी रक्षा कर रहे हैं त्रिदण्डी जैसे दिव्य सन्यासी का अपमान न हो, मनु ने त्रिदण्ड की चर्चा की है दण्ड की चर्चा नहीं की जिससे जानना चाहो जान सकते हो। त्रिदण्ड वैष्णवों का चिह्न है-

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्ड कायदण्डस्तथैव च।

यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डीति कथ्यते।।

यदि रावण ने त्रिदण्ड लिया होता तो वाल्मीकि जी लिखते कि-

दक्षे चांसेऽवसज्याथ स त्रिदण्ड कमण्डलू।

रावण ने दायें कन्धे पर त्रिदण्ड और कमण्डलु ले रखा था किन्तु उन्होंने तो लिखा 'यष्टिकमण्डलू' अर्थात् छड़ी में कमण्डलु लटकाए हुए हैं। इसी से

वैष्णव धर्म की रक्षा हो गई। वैष्णव धर्म की जय हो। इन टीकाकारों को पता नहीं था कि किसी प्रतिभा का फिर जन्म होगा-

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवजां

जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।

उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा

कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।।

यह त्रिदण्डोत्सव अयोध्या में हुआ था मणिराम छावनी में सब लोगों के सामने। श्रीरामचन्द्र परमहंस और श्री हर्याचार्य जी इत्यादि अनेक गण्यमान्य सन्त एवं विद्वज्जन उपस्थित थे। यह हमारी परम्परा किसी सामान्य व्यक्ति की झोंपड़ी नहीं है कि जब चाहो तब उसका अतिक्रमण कर दो। यह सिंह की परम्परा है। टीकाकारों को इतना अनुचित नहीं बोलना चाहिए था जिससे त्रिदण्ड के प्रति अनास्था हो जाय। प्रज्ञानन्द सरस्वती तुम जहाँ हो वहाँ जिस योनि में जन्मे हो क्योंकि इस कुकर्म के बाद मैं तो नहीं मानता कि तुम्हें निर्वाण मिला होगा क्योंकि तुमने इसलिए लिखा कि त्रिदण्ड का अपमान हो जाय। इतनी बड़ी क्षति करने का किसी को अधिकार नहीं होना चाहिए। अस्तु, सीताजी ने जब देखा तो समझ गई कि यह संन्यासी हो ही नहीं सकता। क्योंकि-

द्विजातिवेशेन समीक्ष्य मैथिली

सीता जी ने कहा कुर्सी पर बैठो क्योंकि जानती थीं कि आसन ठीक नहीं रहेगा कुर्सी पर बैठकर ही खायेगा। रावण ने सीताजी का बलात् अपहरण करना चाहा तो सीताजी ने क्रुद्ध होकर कहा-

यदन्तरं सिंहसृगालयोर्वने

यदन्तरं स्यन्दनिका समुद्रयोः।

सौराग्र्य सौवीरकयोर्यदन्तरं

तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च।।

क्रमशः.....

श्रीमद्भगवद्गीता (७६)

(गतांक से आगे)

(विशिष्टाद्वैक श्रीराघवकृपाभाष्य)

भाष्यकार-धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

व्याख्या- तू शब्द यहाँ पक्षान्तर का सूचक है। अनुतिष्ठन्ति शब्द भी पूर्व प्रक्रिया के अनुसार भविष्य काल के अनुसार वर्तमान काल का प्रयोग अचेतसः शब्द में “अपवित्रं चेतः येषां ते अचेतसः” ऐसा विग्रह मानना चाहिए। अर्थात् ज्ञानी को भी भगवत् प्रीति के लिए कर्म करना ही चाहिए। यही निष्कर्ष है। श्री॥

संगति- अब अर्जुन का प्रश्न है कि ज्ञानियों को कर्म क्यों करना चाहिए। इस पर भगवान् कहते हैं।

सद्गुणं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।

३/३३

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ- क्योंकि ज्ञानवान् भी अपनी अनेक पूर्व जन्मों में अनुभूत वासनाओं से युक्त स्वभाव नाम वाली प्रकृति के अनुरूप ही चेष्टा करता है। सभी प्राणी प्रकृति को ही प्राप्त करते हैं। उसमें मेरा तुम्हारा या श्रुतियों का निषेध रूप प्रतिबन्ध क्या करेगा।

व्याख्या- मेरी भक्ति के बिना कोई प्रकृति को नहीं जीत पाता। विश्वामित्र, पराशर जैसे ज्ञानवान् भी प्रकृति के झटके में आ गये। इसलिए निष्काम कर्मयोग रूप मेरा आराधन न करके ज्ञानी प्रकृति पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। उसे तो मेरा भक्त ही वश में करता है। यदि कहो कि श्रुतियों स्मृतियों के निषेध से ज्ञानी प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेगा। इस पर

भगवान् कहते हैं- निग्रहः किं करिष्यति प्रकृति की आँधी के सामने किसी का भी निषेध नहीं चलता। जैसा कि श्री मानस में गोस्वामी जी कहते हैं-

धरे न काहू धीर सबके मन मनसिज हरे।
जेहि राखे रघुवीर तेहि उबरे तेहि काल मँह॥

मानस-१/८५

इसलिए परमेश्वर की पूजा स्वरूप निष्काम कर्म योग का अनुष्ठान करके प्रकृति को जीतो। क्योंकि विग्रह कुछ नहीं करेगा पर मेरा अनुग्रह तुम्हें प्रकृति जयी बना देगा।

संगति- ज्ञानी के बहुत शत्रु होते हैं और कर्मयोगी भक्त अजातशत्रु होता है। इस तथ्य को भगवान् स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्यपरपन्थिनौ॥३/३४

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ- हे अर्जुन! प्रत्येक इन्द्रिय के अपने-अपने विषय में ही पूर्व वासनाओं के अनुसार रागद्वेष व्यवस्थित है। इसलिए साधक को उनके वश में नहीं आना चाहिए। क्योंकि राग और द्वेष ही उसके शत्रु हैं।

व्याख्या- दो बार इन्द्रियस्य कहने का तात्पर्य यही है कि प्रत्येक इन्द्रिय के उसी के विषय में राग द्वेष है। जैसे श्रवण का संगीत में राग गाली में द्वेष। चक्षु राग का स्वरूप में राग विरूप में द्वेष। रसना का मधुर में राग, तीखे में द्वेष। घ्राण का सुगन्ध में राग

और दुर्गन्ध में द्वेष। उसी प्रकार त्वगिन्द्रिय का कोमल स्पर्श में राग और कठोर स्पर्श में द्वेष होता है। इसलिए साधक को उनके वश में नहीं आना चाहिए। परिपन्थी शब्द छान्दस शत्रु अर्थ में प्रयुक्त है।

संगति- इस प्रकार ज्ञानी की दुर्दशा कहकर अब भगवान् सिद्धान्त कहते हैं।

**श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥३/३५**

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ- भली प्रकार से अनुष्ठित अर्थात् सम्पादित दूसरे के धर्म से गुण रहित अपना धर्म भी विपुल गुणों वाला एवं श्रेष्ठ है। अपने धर्म में स्थित रहकर मर जाना श्रेष्ठ है एवं दूसरों का धर्म भयावह है।

व्याख्या- अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार विहित धर्म ही स्वधर्म है। यदि व दूसरे आश्रम वाले व दूसरे वर्ण वालों की दृष्टि से विगुणः दूषण युक्त हो। विगत गुणः तो भी अपने लिए श्रेयान् अर्थात् श्रेष्ठ है और विगुणः अर्थात् विपुलगुणोवाला है। यहाँ विगुण शब्द की दो व्याख्या समझनी चाहिए। विगताः गुणाः यस्मात् स विगुणाः। “विपुलाः गुणाः यस्मिन् स विगुणाः।” युद्ध तुम्हारा स्वधर्म है। तुम श्री वैष्णव हो। अतः यह मेरी आज्ञा पालन रूप धर्म है। तुम क्षत्रिय हो। अतः शत्रुओं का बध करना तुम्हारा धर्म है। तुम गृहस्थ हो अर्थात् निष्काम कर्म तुम्हारा धर्म है। इसी स्वधर्म युद्ध के पालन में निधन अर्थात् मरण तुम्हारे लिए श्रेयस्कर हैं यही यच्छेयाह का उत्तर है। पर धर्मो भयावात भैक्ष्यं भोक्तुं श्रेयः। गीता२/५ ये जो तुम्हारी मान्यता है वह परधर्म है। तुम्हारा धर्म नहीं। क्योंकि श्री वैष्णव, गृहस्थ और क्षत्रिय इन तीनों का भिक्षा मांगना धर्म नहीं है। इसलिए यह तुम्हें भय देगा। तुम भिक्षा देने वाले हो भिखमंगे नहीं। श्री।

संगति- अब अर्जुन जिज्ञासा करते हैं कि पाप करने में कौन प्रेरणा देता है मेरे द्वारा भी बहुत पाप किये गये। क्षत्रिय धर्म से विरुद्ध हथियार डालना और आप परमेश्वर का अपमान करना। तो मुझे इस पाप की किसने प्रेरणा दी होगी अर्जुन की इस जिज्ञासा की संजय धृतराष्ट्र के प्रति अवतारण करते हैं।

व्याख्या- अर्जुनोवाच- यहाँ उवाच का अर्थ है प्रपच्छ। अर्थात् अर्जुन ने भगवान् से पूछा-

अथकेन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।

अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

३/३६

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ- अर्जुन प्रश्न करते हैं विष्णु कुल कमल दिवाकर। अच्छा तो इच्छा न करता हुआ भी बलपूर्वक विकर्म में नियुक्त किया गया जैसा यह पुरुषार्थी साधक किस प्रेरक से प्रेरित होकर शास्त्र विरुद्ध विकर्म रूप पाप का आचरण करता है। अर्जुन का तात्पर्य यह है कि जीव के हृदय में आपके रहते हुए भी आपकी अनुपस्थिति को अनदेखी करके कौन पाप करवाता है जबकि जीव पाप नहीं करना चाहता॥श्री॥

संगति- अर्जुन की जिज्ञासा का समाधान करने के लिए भगवान् वाक्य को भी उपक्रान्त करते हैं।

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।

महाशनो महापाप्म विद्ध्येनमिह वैरिणाम्॥

३/३७

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ- हे अर्जुन! रजोगुण से उत्पन्न यही काम है, यही क्रोध है यह अग्नि के समान बहुत भोजन करने वाला है। यह अत्यन्त पापी है, इस विषय में इसी की ही शत्रु समझो, अर्थात् यही मेरी उपस्थिति की भी अनदेखी करके प्रत्येक प्राणी से पाप कराता है। क्रमशः.....

(गतांक से आगे)

सकल अमानुष करम तुम्हारे

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

सामान्य प्रतिज्ञा नहीं थी ये। और धनुष भी सामान्य नहीं था। स्वयं भगवान शंकर का धनुष था। इसलिए यहाँ, द्रौपदी स्वयंवर जैसी भी स्थिति नहीं है कि कृष्ण भगवान को छल करना पड़े। यह शिवजी का धनुष है तो जो शिवजी से अधिक शक्तिमान होगा, वही न इसको तोड़ेगा। ब्रह्मा और अन्य देवता इसे तोड़ ही नहीं सकते। ये देवताओं का धनुष नहीं, महादेव का धनुष है। और महादेव का धनुष वही तोड़ सकता है जो महादेव का भी देव हो, जो महादेव से भी बलवान हो। क्योंकि शिवजी जगदात्मा हैं— 'जगदात्मा महेश पुरारी।' और रामचन्द्र परमात्मा हैं— 'परमात्मा ब्रह्ममय रूपा' हैं न? शिव कौन हैं? जगदात्मा। कहते हैं— 'जगदात्मा प्रानपति रामा'। इसका क्या अर्थ है। जगदात्मा शिवजी हैं उनके प्राणपति हैं भगवान राम। यहाँ समास करना पड़ेगा। जगदात्मा शिवजी के भी प्राणों के पति हैं प्रभु श्रीराम। भगवान शिव सृष्टि का नाश करते हैं पर उन्हें ताण्डव करना पड़ता है। और यहाँ— 'उमा राम की भृकुटि बिलासा। विश्व होइ पुनि पावइ नाशा।' इसलिए शिव धनुष बहुत कठोर है जिसे तोड़ना कोई साधारण बात नहीं है। इसे साधारण व्यक्ति नहीं तोड़ सकता, उठा भी नहीं सकता। गोस्वामी जी कहते हैं, कवितावली रामायण में, इतना कठिन है ये, पहले इसे सुनते हैं शिव महिम्न से, इतना कठिन है बोले त्रिपुरासुर को मारने के लिए शिवजी को क्या क्या नहीं करना पड़ा। ब्रह्मा जी रथ के सारथी बने। पिनाक नामक धनुष में मारने की शक्ति आयी। पिनाक हिमालय

की शक्ति से बना। स्वयं भगवान नारायण शंकर भगवान के बाण बने। तब वो त्रिपुरासुर को मार सकते थे। और वही धनुष, जिस धनुष पर विष्णु को ही चढ़ाकर वैष्णव बाण बनाया था, भगवान शिव ने। शिव ने चलाया था और वैष्णव बाण इस पर चढ़ा था, विष्णु ही बाण बनकर चढ़े थे तब त्रिपुरासुर को मार सके थे वो। वही धनुष यहाँ विराजमान है। इसका अर्थ कि इसे वही तोड़ सकेगा जो शिव जी से भी बलवान हो और विश्व में सर्वाधिक बलवान हो। और उसी धनुष को भगवती सीताजी ने घोड़ा बनाकर घसीटा था बालपन में। बार बार घसीटा। 'भार्गव राघवीयम्' में बड़ा विस्तृत इसको लिखा है। तो भार्गव राघवीयम् के १२वें और १३वें सर्ग में इसका अच्छा वर्णन है। सीता जी खेलती खेलती यज्ञ स्थल में जाती हैं। और यज्ञ स्थल में जाकर के देखती हैं कि पिताजी शिव धनुष की पूजा कर रहे हैं। उन्होंने कहा— पिताजी क्या है ये? क्यों इसकी आप पूजा करते हैं? ये पृथ्वी पर पड़ा हुआ है, इसमें धूल लगी है। उन्होंने कहा— बेटी, ये साधारण धनुष नहीं है। हमारे पूर्वज इसकी पूजा करते थे, मैं भी इसकी पूजा करता हूँ। उन्होंने कहा— इसको उठाइये। क्या करते हैं? इतना कहते कहते महाराज, उन्होंने सबके देखते देखते उठाया, खींचा और घोड़ा बनाकर 'टिक-टिक' करने लगीं। जनकजी भयभीत हो गए। क्या है ये? कहा कि इसको फेंक देती हूँ यहाँ से। बेकार का स्थान कबूल किए हुए है यहाँ का यह। बहुत मनाया सीताजी को। पर सीताजी— 'यतो यतो धावति मृगशावकाक्षी।' जहाँ

जहाँ से धनुष को लेकर भगवती सीताजी धनुष को लेकर दौड़ती हैं वहाँ-वहाँ लगता है मानो पृथ्वी अपने हृदय को ही कमल का आसन बनाकर भगवती जी का स्वागत कर रहीं हैं। ऐसा धनुष। इसलिए जनकराज ने प्रतिज्ञा की है कि जो इसे तोड़ेगा उसी के साथ सीताजी का विवाह होगा। और इतने ही नहीं। जब से प्रतिज्ञा की है तब से लोग आकर बल को आजमाते जा रहे हैं। आज अन्तिम दिन है। अब इसके बाद स्वयंवर नहीं होगा। तो आज ही तिथि है स्वयंवर की, तो स्वयंवर की तिथि के पहले ही अपने अपने बल आजमा कर चले गए। और आज यहाँ बन्दिगन इस धनुष के सम्बन्ध में विज्ञापन करते हैं 'छोनी छोनी छोनपति छोनी छोनी छोनी। प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुब्रह्म बोले बन्दिगण बिरुद बजाइ तुलसी मुदित सब बार-बार जोहे मुख अवध महाराज के।' सब लोग राघवेन्द्र जी का मुखारविन्द निहार रहे हैं अहाहा! सब आए हैं। और बन्दियों ने कहा- 'बोले बंदी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल। पन विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल।' हम जनक का प्रण कह रहे हैं। तुम महिपाल हो। बन्दीगण बड़ा गम्भीर कहते हैं। तुम महिपाल हो। तुम इतने विदित हो गए हो। तुम महिपाल हो और ये महि की बेटी है। वास्तव में तो ये तुम्हारी धर्म पुत्री हुयीं। अब तुम पुत्री से विवाह करने आए हो, राक्षस हो। नीचता की तुमने सीमा कर दिया। इसीलिए रामजी अभी राजा नहीं राजकुमार हैं। तब राजाओं ने कहा- जनक ने क्यों प्रतिज्ञा कर ली? कहा- 'पन विदेह कर', उनके पास तो देह ही नहीं है, तुम तो जानते हो। वो तो व्यवहार से परे हैं पर तुम तो व्यवहार जानते हो। तुमने क्यों व्यवहार तोड़ा? और ऐसी बात कही- 'नृप भुजबल बिधु शिव धनु राहू।

गरुअ कठोर बिदित सब काहू।' बन्दियों ने कहा- जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है उसी प्रकार राजवंश के भुजबल का राहु है ये शंकर का धनुष। और राहु कहने का एक और बड़ा गम्भीर भाव था कि राहु है राहु, विष्णु भी जिसको नहीं मार सके। इसलिए विष्णु भी इसे नहीं तोड़ सकेंगे। इस चक्कर में मत रहना। यहाँ बड़ा गम्भीर संकेत है कि राहु का सुदर्शन चक्र से सिर काटने पर भी राहु नहीं मरा था, उसे विष्णु भी नहीं मार सके थे, इसी प्रकार इसको विष्णु भी नहीं तोड़ सकते। इसको तोड़ने के लिए तो महाविष्णु को आना पड़ेगा- 'सकल अमानुष करम तुम्हारे।' ध्यान रखिए। और मित्रों- 'रावन बान महाभट भारे। देखि शरासन गवहिं सिधारे।' तुम कौन होते हो? रावण और बाणासुर भी इसे देखकर चले गए। बाणासुर परिक्रमा करके चला गया और रावण पराभव पाकर गया। 'सकेउ उठाय.... गेरू। सो.... फेरू।' फिर आया है रावण आज। अन्तिम बार भी आया है। इस बार भी है इस सभा में। क्योंकि मन्दोदरी कही- 'जनक सभा अगनित भोला। रहे तुमहू बल बिपुल बिशाल।' तुम भी थे वहाँ पर। 'भंजिधनुष जानकी बियाही। तब संग्राम जितेहु किन ताही।' तब क्यों नहीं युद्ध में जीता? बन्दीगण कहते हैं- राजाओं, समझ लेना। 'सो पुरारि कोदंड कठोरा।', यह सामान्य नहीं है। यह कछुए की पीठ से भी कठोर है, वज्र के शिखर से भी कठोर है ये। इसे तोड़ना कोई सामान्य बात नहीं होगी। इसे तोड़कर कोई दिखा दे। पहले चढ़ाए, फिर तोड़े। उठे लोग। आप पूरी कथा जानते हैं। ये टूट क्यों नहीं रहा है। बड़ी मधुर बात है। टूट नहीं रहा है, किसी से नहीं टूट रहा है। इसके प्रति भिन्न भिन्न उत्प्रेक्षाएँ दी गयीं। तुलसीदास जी ने कहा है इधर धनुष बिना राम के नहीं टूटेगा और उधर 'नृप सब लखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी।' क्रमशः.....

गतांक से आगे-

‘काका विदुर’ (हिन्दी खण्डकाव्य)

□ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

होकर भी दूषण वह भुवन विभूषण है,
 यदुवंश भूषण ने जिसे है किया अंगिकार।
 भूषण भी दूषण के रूप में प्रतीत होता,
 जिसे किया सर्वथा मुकुन्दजु ने अस्वीकार।
 जिसकी निज सत्ता से संसार सा बिराजता है,
 दुःख का आगार भी संसार नित्य निरासार।
 “गिरिधर” असार भी संसार हुआ नाथ पाके
 श्याम को अनाथ नाथ है ये देवकी-कुमार॥१७॥
 मेरी अन्तरंगता की एक साक्षिणी है यह,
 सरित भावना की मंजु मूर्ति करुणा की है।
 मूर्तिमति श्रद्धा मेरी भक्ति की निधानभुता,
 साधना की पूंजी कुंज सकल कला की है।
 इसने स्निग्ध दृष्टि द्वारा भावना निगूढ़ मेरी,
 मानस में बार बार बाँकी झाँकी झाँकी है।
 कहते हैं प्रेम में विनोद भावना में हरि,
 काका से करोड़ों गुनी चतुर मेरी काकी है॥१८॥
 पत्र पुष्प फल जल जो भी भक्ति भावना से
 श्रद्धा के सहित मेरे चरणों में चढ़ाता है।
 होकर साकार रूप करता हूँ स्वीकार उसे,
 पूत भावना का ही समर्पण मुझे भाता है।
 भाव का हूँ भूखा मैं समर्पित शुद्ध धारणा से,
 कालकूट मेरे लिए अमृत बन जाता है।
 मैं हूँ निर्लेप निरपेक्ष मुक्त गुणातीत,
 भक्तों से तो मेरा एक प्रेम का ही नाता है॥१९॥
 अगम अगाध भववारिधि से तरने को दृढ़,
 विराग युक्त ज्ञान सलिल यान के समान।
 किन्तु उसे सर्वदा संचालित करने के लिए,
 परम विशुद्ध प्रेम कर्णधार है प्रधान।

प्रेम बिना थोथे सब जप तप व्रत अनुष्ठान,
 प्रेम जन जीवन धन प्रेम ही शाश्वत निधान।
 प्रेम ही है माध्यम दिव्य मेरे प्रागट्य का भी,
 “गिरिधर” के हेतु प्रेम सर्वदा है जीवनप्राण॥१००॥
 रोक यदुनाथ को बिहसी बैन काकी बोली,
 छोड़ो इन निरसों को कितना समझाओगे?
 लीलाधर! ज्ञानियों की होती है विचित्र लीला,
 इनके क्रम का तो पार तुम भी नहीं पाओगे।
 इनके तर्कवाद के चपेटे में कृपानिधान,
 “गिरिधर” मृदु हृदय की सरसता गँवाओगे।
 अंचलकी ओट कान्ह पास कान में यूँ बोली,
 सत्य सत्य कहो लाला! और कुछ खाओगे?॥१०१॥
 सम्मति मूक बिलोकी मुकुन्द की,
 शाक अलोने को ले तब आई।
 गोद बिठाये के फूँक सप्रेम सो,
 माधव को जननी ज्यों खिलाई।
 भाव से तृप्त किये जगदीश को,
 शीतल जाह्नवी नीर पिलाई।
 अंचल से मुख पोंछ रही,
 पद पंकज में प्रभु के लपटाई॥१०२॥
 काकी औ भतीजे का देख पारस्परिक प्रेम,
 भाव मुग्ध विदुर कुछ क्षण के लिए रहे मौन।
 बोले हे अनाथ नाथ! मेरे आज भाग खुले,
 करुणाकर स्वयं ही पधारे दीन के यों भौन।
 प्रार्थना मैं करूँ एक भक्तवश्य कृपासिंधु,
 दम्पति के उरालय से न करो कदापि गौन।
 साँवरे सलोने लोने लाल नंद जसोदा के,
 वसुदेव नन्दन मुकुन्द राधिका के रौन॥१०३॥
 क्रमशः.....

गुरुवर दर्शन मंगलकारी

□ श्री विशेष नारायण मिश्र (संगीत विभाग)

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ०प्र०)

दोहा- श्री पद नख में नमन कर, कलुषित मन को त्याग।
गुण-गण प्रतिपल ध्यान धर, लेश न मन में आस।।
युगल चरण छबि हृदय में, है विशेष अति भाग।
सद्गुरुवर प्रभु राममय, हौं दासन को दास।।

जय गुरुप्रवर संत हितकारी। भारत भूमि आपको प्यारी।।
जन्म जौनपुर जनपद लेके। हृदय प्रकाश किये जन लेखे।।
बाजै मंगल बाज बधाई। भुवन चौदहों आनंद छाई।।
भौतिक ज्योति नयन की जाई। दिव्य दृष्टि प्रभु आपन पाई।।
जिह्वा लसें सरस्वति माई। आशिष दीन्हि देव समुदाई।।
शिर पर लम्बी शिखा विराजै। गुरुवर काँध जनेऊ छाजै।।
तीन रेख माथे पर सोहै। कर त्रिदण्ड सब जन मन मोहै।।
माल सुकंठ सुमन की छाई। सकल वाङ्मय सम गति पाई।।
चरण पादुका गेरुव वस्त्रम्। माल फिरे नित गुरु के हस्तम्।।
सपनेहुँ नाहिं लखे परदोष। राम नाम को हृदय भरोसा।।
गुरुवर भारत रत्न हमारे। सकल जगत के भाग सँवारे।।
करुणाकर की करुणा छाया। नहिं प्रभाव दिखलाये माया।।
ऋषिवर रामभद्र - रघुराई। इक दूजे की प्रीति समाई।।
हिन्दी - हिन्दू - हिन्दुस्थान। इन सबके हित दे दें प्राण।।
कूट कूट हिन्दुत्व भरा है। धन्य धन्यता धन्य धरा है।।
चित्रकूट श्री गुरुवर छाये। रघुवर कृपा सकल विधि पाये।।
अनुज सिया संग राम विराजै। गुरुवर काँच के मंदिर छाजै।।
मानवता के एक पुजारी। गुरुवर रामभद्र आचारी।।
धन्य हो गुरुवर की गुरुताई। विकलांगों को हिये लगाई।।
दीन जनों के यही सहाई। सुर-नर-मुनिजन करें बड़ाई।।
हैं संकल्प हिमालय के सम। जब तक पूर्ण करें ना लें दम।।

अनुपम विद्या मंदिर दाता। विकलांगों के भाग्य विधाता॥
 मानस मंदिर के निर्माता। गुरुवर का रघुवर सो नाता॥
 मन ही मन विश्वकर्मा लाजें। अन्तर्मन इनके गुण गाँजें॥
 गुरुवर सम कोई नहीं दूजा। करते सब देवन की पूजा॥
 धर्म ध्वजा केसरिया लहरे। विश्व के कोने कोने फहरे॥
 गुरुवर का विकल्प नहीं जग में। रघुपति कृपा फूल पग पग में॥
 शचीपूत हुलसी के नंदन। जानें जगत करे पद वंदन॥
 धन्य कोख गुरुदेव की माई। रघुपति कृपा प्रकट भै आई॥
 धन्य धन्य वह धरणी माता। जिसकी माटी पले विधाता॥
 जय जय जय श्री जय गुरुदेवा। धन्य भाग हम पाये सेवा॥
 धन्य हो मेरे गुरुवर की जय। दरसन से हो पापों का क्षय॥
 ऐसे हैं गुरुदेव हमारे। सबके ही अँखियों के तारे॥
 अतिशय कृपा प्रभू की पाई। जय जय करें जानकी माई॥
 रोम रोम श्री राम विराजें। संभव है हनुमत भी लाजें॥
 गुरुवर दर्शन मंगलकारी। प्रवचन भी है अति सुखकारी॥
 राम प्रेम की परछाई हैं। सुखमंगलमय शहनाई हैं॥
 जो गुरुदेव की छैयाँ आता। छूटे दोष दुखों से नाता॥
 गुरुवर ताही गरे लगड़हैं। भाव “विशेष” शरण जो अड़हैं॥
 जो गुरुवर के सद्गुण गावैं। नवधा भगति उसी को पावैं॥

दोहा- गुरुवर संबल आपका, आपहि रघुपति मोर।

मन मंदिर में आ बसो, पाऊँ भक्ति अथोर॥

(१)

कोसलनंदन राम कृपा ही, निश्चय रूप से आइ गई है।
 श्री गुरुदेव के रूप में आइकै, तीनिहुँ लोक समाइ गई है।
 काज किये विकलांगन के हित, नैन बदरिया छाड़ गई है।
 आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाड़ गई है॥

(२)

बालपने से ही काया गुरु जी की, राम के रंग रँगाइ गई है।
 श्री चित्रकूट में आइ बसे जबसे तबसे सुख छाड़ गई है।

होत अनन्द महाछबि देखिके कामिहुँ शोभा लजाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है॥

(३)

राम सुप्रेम में प्रीति बढी अस प्रीति की प्रीति भुलाइ गई है।
प्रीति की रीति कही नहीं जाय कि प्रीति की भीति ढहाइ गई है।
संत-असंत-महंत-श्रीमन्तको प्रेम को पंथ बताइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है॥

(४)

मानस मेघ झमक्कि झमाझम मानस भूमि नहाइ गई है।
श्री गुरुदेव के माध्यम मानस-मानस-मानस छाइ गई है।
मानस ही नहीं शास्त्र समुन्दर बुद्धि अकूत थहाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है॥

(५)

कोकिल बैन हिये सुख दैन सभै सुन कानन भाइ गई है।
पावन कीर्ति महाप्रभु रामकी राग-विराग सुझाइ गई है।
माई सरस्वति कंठ समाइके सरगम गीत सुनाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है॥

(६)

कारज एक से एक किये बहु तर्जनी दांते दबाइ गई है।
कीरति आजु सुगंध स्वरूप में दिग् औ दिगंत में छाइ गई है।
ऐसी न देखी न सुनी न एकहुँ ज्योति बिना सब आइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है॥

(७)

ऐसी है कौन मती जो किसी गुरु ज्ञान के थाह थहाइ गई है।
एक मती जो बृहस्पति जी की मती को भी आजु लजाइ गई है।
गुरुवर के गुरुवर प्रति उत्तर गुरुवर की गुरुवाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है॥

(८)

रामहिं राम बसें प्रति रोम में रामहिं के मन भाइ गई है।
प्रीति की रीति निहारि गुरु की कुरीति की पाक पिराइ गई है।

हर्षित हैं सब शिष्य समूह कि लोचन के फल पाइ गई है।
आजु दिशा-विदिशाओं में जाइके सोन चिरैया गाइ गई है॥

दोहा- सीयराम छवि छँकि रहे, मात शची के पूत।
जय गुरुवर जय जय कृपा, जय श्री राम के दूत॥

आरती कीजै माँ शची लला की।
प्रेममूर्ति सियराम कला की॥
जाके मति सों बुधजन झांपें।
जिसकी गति जाई नहिं मापे॥
रघुपति दूत महासुखदाई।
दीन-हीन के सदा सहाई॥
रघुवर चरित वीथिनिन्ह बिहरें।
भाव अकूत लिये प्रभु हियरे॥
भारत भूषण श्री गुरुराई।
महिमा नेति नेति जन गाई॥
जगद्गुरुत्व के भाग सँवारे।
भक्तजनों के प्राण अधारे॥
भगवावस्त्र त्रिदंडीधारी॥

अनाचार की रीति पँवारी॥
गुरुवरजी की यही कहानी।
चित्रकूट ही है रजधानी॥
पुष्ट शरीर वामनी काया।
प्रज्ञा का कोई पार न पाया॥
तीनिहुँ लोक सुकीरति गावैं।
गुरुवर नेम को पाठ पढ़ावैं॥
आरति थाल अकाशहुँ छाई।
दीपक तारे विविध सजाई॥
भाव “विशेष” जो आरति गावैं।
सोइ गुरुदेव कमल पद पावैं॥

□□□

भरतहिं त्याग धरम धन खानी

□ श्रीशिव कुमार सिंह ‘शिवम्’, श्री परमधाम (फरीदाबाद)

आत्मधरम सद् चिद् आनन्दमन घट मैंह सारंगपानी।
नन्दिग्राम बसि चरित त्यागमय आत्म राम पहिचानी॥
भरतहिं त्याग धरम धन खानी
रामकृपा बिनु सत नहिं उपजै चिद् बिनु रामहिं जानी।
बिनु त्यागहिं आनन्द न उपजै रामानन्द रस खानी॥
भरतहिं त्याग धरम धन खानी
रामानन्द रति रामभद्र बर भरत चरित्र बखानी।
जेहिं करनी रघुबर रस बरसै भरत धरम सोइ जानी॥
भरतहिं त्याग धरम धन खानी

भरत धरम सद् चिद् आनन्दहिं मनुवा बनत निमानी।
गुरुपद जगत आचार्य रामभद्र बिनु देखेहिं पहिचानी॥
भरतहिं त्याग धरम धन खानी
सेवा बिकल अंग हित अवधहिं चित्रकूट सम जानी।
भरतहिं धरम रामरति हित पुरु त्यागहिं भोग निमानी॥
भरतहिं त्याग धरम धन खानी
त्याग कथा यह भरतचरितरस शिव तुलसी उर आनी।
शिवम् परमरचना केशवकरि रामहिं भद्र बखानी॥
भरतहिं त्याग धरम धन खानी

□□□

भारतीय जीवनमूल्य

□ डा० धर्मपाल मैनी (गुड़गाँव)

मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने का श्रेय उन उदात्त जीवन-मूल्यों को है, जिनके माध्यम से वह अपना सात्त्विक जीवन बिता रहा है। वस्तुतः किसी भी राष्ट्र का मूल्यांकन वहाँ के जन-समाज के आचरणगत मूल्यों के आधार पर ही होता है। प्रत्येक राष्ट्र की एक परम्परागत संस्कृति होती है, जिसका सृजन उन मूल्यों के आधार पर होता है जिन्हें वहाँ के महापुरुषों ने अपने जीवन में अपनाया। वस्तुतः उन मूल्यों के और उनके माध्यम से ही उनका चरित्र एवं व्यक्तित्व गौरवमय बनकर स्वर्णाक्षरों में अंकित हुआ है। किसी भी देश की भौतिक प्रगति का भी महत्त्व है लेकिन भौतिक प्रगति को उस देश का शरीर कहा जा सकता है, जबकि उसमें प्राण-तत्त्व का संचार करने वाले जीवन-मूल्य ही हैं। इससे किसी भी व्यक्ति, जाति, समाज, देश व राष्ट्र के जीवन-मूल्यों का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

किसी भी समाज की धारणाएँ, मान्यताएँ, आदर्श और उच्चतर आकाक्षाएँ ही वहाँ के जीवनमूल्यों का सृजन करती हैं और यह देश, काल व परिस्थिति सापेक्ष होती हैं। यद्यपि इन जीवन मूल्यों की आधार-भूमि में प्रायः परिवर्तन नहीं होता, परन्तु उनके व्यवहृत रूप में परिस्थिति-जन्य परिवर्तन होता रहता है। भारतीय जीवन में नारी के शील की रक्षा का सदा से विशेष महत्त्व रहा है। मध्य युग में सशक्त विदेशी आक्रमणकारियों की ज्यादतियों से जब यहाँ के अशक्त

राजा और जन-समाज उनकी रक्षा न कर सके, तो न केवल सामूहिक जौहर को प्रश्रय मिला अपितु सम्भवतः सती-प्रथा का प्रचलन भी तभी हुआ। भारतीय नारी ने विदेशी पाशविक-शक्ति का शिकार होने की अपेक्षा प्राणों की बलि दे देने को श्रेयस्कर समझा। उन परिस्थितियों में यही यहाँ का जीवन मूल्य था, लेकिन बदलते परिवेश में आज इसकी आवश्यकता नहीं, अतः वही सती-प्रथा, जो उस युग में गौरव का कारण बनी थी, आज निंदनीय व अवांछनीय हो गयी। मूलाधार वही रहा- नारी के शील की रक्षा। आज भी मदोन्मत्त मानव की राक्षसी वृत्तियों का शिकार होने से बचने के लिए प्राणों की आहुति देने वाली नारियों को यहाँ सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है- यह क्या कम है? जीवन के उच्चतर मूल्य ही वह आदर्श बने रहते हैं, जिनके लिए मानव न केवल अनंत कष्ट सहकर जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार हो जाता है, अपितु समय आने पर प्राण तक न्यौछावर कर देता है लेकिन अपने मूल्य नहीं छोड़ता। पितृ-भक्त राम सहर्ष राज्य त्याग कर चौदह वर्षों के लिए वन को चले गए और “**प्राण जाहिं बरु वचन न जाई**” का पालन करते हुए दशरथ पुत्र-वियोग में स्वर्ग ही सिधार गए, पर अपने वचन का पालन करने में नहीं चूके। महाराणा प्रताप वन-वन मारे फिरते रहे, बच्चे को घास की रोटी तक खिलाई लेकिन न स्वाभिमान का त्याग किया और

न ही पराधीनता स्वीकार की। नौ वर्ष के गुरु गोविन्द सिंह ने धर्म की रक्षा के लिए पिता तेज बहादुर को ही श्रेष्ठ मानव बताते हुए धर्म की बलिवेदी पर चढ़ने के लिए प्रेरित किया। इतना ही नहीं, “स्वधर्मो निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः” (अपने धर्म में मर जाना अच्छा है लेकिन धर्म-परिवर्तन नहीं करना, क्योंकि वह भयावह है)। इस जीवन-मूल्य से अभिसिंचित होने के कारण उनके सात और नौ वर्ष के पुत्रों ने भी अपने को दीवार में जिन्दा ही चिनवा लेना अच्छा समझा, लेकिन धर्म-परिवर्तन से मनाही कर दी। स्वतः गुरु गोविन्द सिंह दूसरे दोनों पुत्रों के युद्ध में शहीद हो जाने के बाद भी जीवन-भर अत्याचारी औरंगजेब और उसके सेनापतियों से जूझते रहे, लेकिन धर्म, जाति और देश की पराजय स्वीकार न की। भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को कौन भुला सकता है, जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते चूम लिए और उफ तक न की। ये हैं इन देश-भक्तों के मूल्य-स्वाभिमान, स्वतन्त्रता-प्रेम, धर्म-रक्षा और देश-प्रेम जिन्होंने इन मूल्यों के लिए बड़े से बड़ा त्याग किया और भारत ही क्या, विश्व के इतिहास में अमर हो गए।

जीवन-मूल्यों का आधार

भारतीय जीवन-मूल्यों को जानने के लिए उनके आधार को समझना आवश्यक है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने मात्र पशुवत् जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा कुछ और अच्छी तरह जीवन जीने की कला सीखनी चाही होगी। समूह में जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा सम्भवतः आत्मरक्षा

के सिद्धांत से मिली हो। यह आत्म-रक्षा ही सम्पूर्ण समूह की रक्षा में परिणत हो गई। इसी से मानव को अमूल्य जीवन का महत्त्व समझ में आया। मानव में “जीवन की आस्था” उत्पन्न हो गयी और वह अपने समूह व समाज के सभी मनुष्यों के जीवन के महत्त्व को अनुभव करने लगा। यही जीवन-मूल्यों के प्रति उसके विश्वास का आरंभ था। वस्तुतः इन मूल्यों का आधार श्रुति, स्मृति, पुराणों में अन्तर्निहित सत्य एवं महापुरुषों का अनुभूत सत्य एवं सदाचरण ही है, जिसे हम इस रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। बौद्धिक प्राणी होने के कारण वह प्रत्येक कार्य के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करने लगा- पहले वैयक्तिक दृष्टि से, पुनः सामाजिक दृष्टि से और अन्ततः मानवीय दृष्टि से। धीरे-धीरे उसने अपने अन्तर्मन में स्वीकार कर लिया कि इस औचित्य-अनौचित्य का आधार उसका बौद्धिक विवेक है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो। वैयक्तिक क्षेत्र में व्यक्ति अपने-आप ही दोनों पक्षों की ओर से तर्क-वितर्क कर किसी निर्णय पर पहुँचता है, जबकि सामाजिक क्षेत्र में सभी व्यक्ति दो या अधिक पक्षधर बनकर अपना-अपना पक्ष स्पष्ट और सशक्त करने का प्रयत्न करते हैं। मानव ने इस विवेक शक्ति के महत्त्व को भी स्वीकार किया और जीवन-मूल्यों के आधार-स्वरूप इसे अपनाया। जब उसका एक ही मूल्य अन्यान्य देश, काल व परिस्थितियों में उपयुक्त न प्रयुक्त हुआ, तो उसने इन पर भी विचार करना आवश्यक समझा और इस निर्णय पर पहुँचा कि इन परिवर्तनों के साथ जीवन-मूल्यों में भी परिवर्तन आवश्यक है, अतः समग्र

परिवेश को भी इसका आधार स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि ये जीवनमूल्य इस व्यापक जन-समाज के कल्याण के लिए न हों, तो उन्हें भी नहीं स्वीकार किया जा सकता, अतः जीवनमूल्यों का एक महत्त्वपूर्ण आधार बना लोक-कल्याण की चेतना। यह सब तो ठीक है, लेकिन एकाकी मानव का क्या हो? क्या वह अपने सभी मूल्यों का लोक-कल्याण के लिए त्याग कर दे अथवा वहाँ भी विवेक एवं अन्य आधारों का आश्रय लेकर अपने “आन्तरिक उन्नयन” पर विचार करे? स्पष्ट है कि जो मूल्य व्यक्ति का “आन्तरिक उन्नयन” नहीं करते, वे भी जीवनमूल्य नहीं हो सकते। संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि भारतीय जीवन-मूल्यों के निम्न आधार हो सकते हैं:-

१. जीवन के प्रति आस्था और लगाव
२. विवेकशील चिन्तन
३. परिवेश-बोध
४. लोक-कल्याण की चेतना और
५. वैयक्तिक उदात्तीकरण अथवा आन्तरिक उन्नयन

इन आधारों को ध्यान में रखते हुए मानव-मूल्य की परिभाषा है- किसी देश, काल और परिस्थिति में जन-सामान्य की उदात्त मान्यताएँ ही मानव मूल्य होती हैं। और कसौटियाँ हैं:-

१. जिसका ध्येय व्यापक लोक-कल्याण हो।
२. जिससे व्यक्ति का उदात्तीकरण हो।

मूल्यों का वर्गीकरण

जीवन-मूल्यों का व्यापक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनका वर्गीकरण भी किया जा सकता है। जैसे:- शारीरिक मूल्य में स्वस्थ देह की बात कही जा सकती है, जिसके अनिवार्य तत्त्व हो सकते हैं:- नीरोग, सशक्त, सहनशील, सब अंगों का आनुपातिक विकास,

आयु के अनुसार आनन पर तेज, सौंदर्य और स्फूर्ति। इसीप्रकार वैयक्तिक मूल्यों में आत्मबल, आत्मविश्वास, स्वाभिमान, आत्म-निर्भरता, निर्भीकता, सन्तोष, धैर्य, संकल्प, सहृदयता आदि को लिया जा सकता है। आर्थिक मूल्यों में उचित साधनों से धन का उपार्जन, सत्य मार्ग से ही उसका व्यय, मितव्ययता, उपयुक्त दान तथा अनावश्यक संग्रह न करना आदि। हमारे यहाँ कहा भी है- “अर्थस्य तिस्रः गतयः दानं भोगो नाशश्च” (धन की तीन गतियाँ होती हैं- उपभोग कर लो, दान दे दो अन्यथा नष्ट हो जायेगा)। नैतिकजीवन मूल्यों में कर्तव्य पालन, ईमानदारी, त्याग, बलिदान, परोपकार, सेवा, सदाचार, शिष्ट व्यवहार, सत्यनिष्ठा, व्यवस्था के प्रति आदर आदि को लिया जा सकता है। सामाजिक मूल्यों में सद्भावना, सहानुभूति, सहयोग, मानवीयता आदि को रखा जा सकता है। राजनीतिक मूल्यों में राष्ट्रप्रेम, स्वतन्त्रता, अनुशासन, विजयोल्लास आदि का महत्त्व है। धार्मिक मूल्यों में अव्यक्त सत्ता में विश्वास, भगवद्भक्ति, कीर्तन, गुणगान, प्रार्थना आदि को लिया जा सकता है। बौद्धिक मूल्यों में महत्त्वपूर्ण है- कल्पना, जिज्ञासा, विवेचन, विश्लेषण, वैज्ञानिक चिन्तन, मनन, रचना-धर्मिता और विवेक। सौंदर्य संबंधी मूल्यों में संवेदनशीलता, कलाप्रेम, प्रकृति-प्रेम, मानव सौंदर्य प्रेम आदि को स्थान दिया जा सकता है। आध्यात्मिक मूल्यों में ध्यान-परायणता, शरीर-बोध से अतीत अवस्था को प्राप्त करना, ब्रह्मानुभूति के पथिक बनना व ब्रह्म-तत्त्व की खोज आदि हैं।

इन्हें अन्यान्य वर्गों में रखने का तात्पर्य यह नहीं कि इनका परस्पर संबंध नहीं। वस्तुतः यह सभी मूल्य-वटवृक्ष रूपी जीवन-मूल्य की शाखा-प्रशाखाएँ ही हैं।

□□□

केवट की भक्ति

□ श्री जगदीशप्रसाद गुप्त (जयपुर)

प्रभु श्रीराम सुमंत्रजी (महाराज दशरथजी के मंत्री) को अयोध्या जाने को लौटाकर, स्वयं सीता, लक्ष्मण व निषादराजगुह के साथ गंगा जी के तट पर आकर, गंगा-पार कर, आगे वन की ओर जाना चाहते हैं। गंगा-पार के लिए उन्हें नाव की आवश्यकता होती है। वे सर्वसमर्थ प्रभु श्रीराम, जिनके चरण कमल से श्री गंगा प्रकट हुई, जो बड़े-बड़े पापों का नाश करने वाली है, केवट से नाव माँगते हैं-

तुलसी जेहि के पद पंकज ते प्रगटी तटिनी, जो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरबे कहूँ मांगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े।।

(कवितावली-अयोध्याकाण्ड ५ (३-४))

केवट नाव लेकर नहीं आता है और प्रभु से कहता है कि उसने उनके रहस्य को जान लिया है- आपके चरण कमलों की धूल के लिए सभी कहते हैं कि वह मनुष्य बना देने वाली कोई जड़ी है-

माँगी नाव न केवट आना।

कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।।

चरण कमल रज कहूँ सबु कहई।

मानुष करनि मूरि कछु अहई।।

(रामचरितमानस-अयोध्याकाण्ड १००(३-४))

केवट कहता है-“हे प्रभो! इस घाट से थोड़ी ही दूर पर केवल कमर भर जल है। चलिए, मैं यह थाह दिखला दूँगा। आपकी चरण-रज का स्पर्श कर मेरी नाव का उद्धार हो गया तो मैं घर की स्त्री को कैसे समझाऊँगा-

एहि घाटतें थोरिक दूर अहै कटि लौं जलु, थाह देखाइहौं जू।
परसे पग धूलि तै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू।।

(कवितावली अयोध्याकाण्ड ६(१-२))

केवट आगे कहता है-हे प्रभो! आपके चरण कमलों की धूलि से पत्थर की शिला सुन्दर स्त्री हो गई; कहीं मेरी नाव भी मुनि की पत्नी न बन जाये,

मेरी नाव की लकड़ी पत्थर से कठोर नहीं है, मेरी नाव तो अवश्य ही मुनि पत्नी होकर उड़ जायेगी। मैं कुछ और काम करना नहीं जानता हूँ, सिर्फ इसी नाव से अपने सारे परिवार का पालन-पोषण करता हूँ-

छुअत सिला भइ नारि सुहाई।

पाहन तें न काठ कठिनाई।।

तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई।

बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।।

एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू।

नहिं जानउँ कछु अउर कबारू।।

(रामचरितमानस-अयोध्याकाण्ड-१००(५-६-७))

केवट की इस मनोदशा का चित्रण बाबा सूरदास जी ने अपने पद में इस प्रकार किया है-

बार-बार श्रीपति कहैं, धीवर नहिं मानै।

मन प्रतीति नहि आवई, उड़िबौ ही जानै।।

नेरें ही जलथाह है, चलौ, तुम्हें बताऊँ।

सूरदास' की बीनती, नीकैं पहुँचाऊँ।।

(सूर राम चरितावली-पद ३० (९-१२))

भोला केवट प्रभु से पूछता है कि वास्तव में वे गंगा-पार जाना चाहते हैं तो मुझे पहिले अपने चरण कमल धोने के लिए आज्ञा दीजिए-

जाँ प्रभु पार अवसिगा चहहू।

मोहि पद पदुम पखारन कहहू।।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १००(८))

देखिए! केवट भोला ही नहीं, चतुर भी है। प्रभु के श्रीचरणों को धोने के लिए क्या अजीब भूमिका बनाई। क्या प्रभु ऐसे भक्त से चरण धोने के लिए मना कर सकते हैं? कभी नहीं। इसी बीच, केवट सोचता है कि प्रभु श्रीराम चरण धोने के लिए मना तो नहीं करेंगे, लेकिन कहीं लक्ष्मण स्वभाववश बाधक नहीं बन जायें- कहीं स्वयं ही श्रीचरण धोने लगें,

और ये सोचें कि केवट को अधिक उतराई लेने का लोभ है। इसलिए, इन सभी आशंकाओं पर अपनी ओर से पहल करते हुए प्रभु के श्रीचरणों में अपनी इच्छा प्रकट कर देता है—

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं।
बरू तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहौं।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०० छंद)

केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर प्रभु सीता और लक्ष्मण की ओर देखकर हँसते हैं—

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।

बिहसे करूनाएन चितइ जानकी लखन तन।।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०० सौरठा)

मानस के इस केवट पर आजकल के कथावाचक उसके पूर्वजन्म के अनेक प्रसंग, 'प्रभु क्यों हँसे' पर, सुनाते हैं—विशेषतः, १. क्षीर समुद्र में श्री विष्णु भगवान के श्रीचरणों के पास एक कच्छप को आने पर लक्ष्मीजी और शेषनाग जी ने रोका था—आज वही कच्छप केवट है, लक्ष्मीजी सीताजी हैं और शेषनाग लक्ष्मण जी हैं। २. सीताजी और लक्ष्मणजी ने प्रभु के दायें चरण व बायें चरण की सेवा का बँटवारा कर रखा है, अब यह केवट दोनों ही चरण धोना चाहता है।

केवट के अटूट प्रेम को देखकर कृपालु प्रभु उससे मुस्करा कर कहते हैं कि तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाये। प्रभु तो भक्त के वश में रहते हैं। केवट से कहते हैं कि हमें देर हो रही है, जल्दी से जल लाकर, पैरों को धोकर पार उतार। पता नहीं प्रभु को कहाँ के लिए देर हो रही है, हो सकता है कि प्रभु के भक्त की कामना को पूर्ण होने में देरी का आभास हुआ हो और इसलिए, जल्दी से जल्दी अपने चरणों को धुलवा लेना चाहते हों—

कृपासिंधु बोले मुसुकाई।

सोइ करू जेहिं तव नाव न जाई।।

बेगि आनु जल पाय पखारू।

होत बिलंबु उतारहि पारू।।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०१(१-२))

ये प्रभु ऐसे हैं, जिनके नाम को एक बार स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागर से पार उतर जाते हैं— वे ही कृपालु प्रभु गंगा पार के लिए केवट से अनुग्रह कर रहे हैं, जिन्होंने संसार को तीन पग से भी छोटा कर दिया था—

जासु नाम सुमिरत एक बारा।

उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।।

सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा।

जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा।।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०१(३-४))

प्रभु की ऐसी भक्तवत्सलता को देखकर माँ गंगा भी हर्षित होती हैं। केवट को प्रभु का आदेश मिल गया है, वह कठौते में जल भरकर ले आया—

पद नख निरखि देवसरि हरषी।

सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी।।

केवट राम रजायसु पावा।

पानि कठवता भरि लेइ आवा।।

(अयोध्याकाण्ड १०१(५-६))

केवट की मनोकामना पूरी हो रही है, उसे अति आनन्द हो रहा है। उसे प्रभु के चरण सुलभ हो गये हैं, अति आनन्द व प्रेम में उमंगकर प्रभु के चरण कमल धोने लगा। आज तक किसी भक्त को प्रभु का ऐसा आशीर्वाद नहीं मिला है जैसा केवट को मिला है। समस्त देवता फूलों की वर्षा कर केवट की प्रशंसा करते हैं कि इसके समान कोई पुण्यवान नहीं है—

अति आनन्द उमगि अनुरागा।

चरन सरोज पखारन लागा।।

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं।

एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं।।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०१(६-७))

तुलसी सराहै ताको भागु, सानुराग सुर।

बरषैं सुमन, जय जय कहै टेरि टेरि।।

(कवितावली अयोध्याकाण्ड १०(५-६))

वह केवट अपने परिवार सहित प्रभु के चरण कमलों को धोये जल का पान करता है, अपने पूर्वजों का भी उद्धार कर लेता है और फिर, इसके बाद ही मुदित होकर प्रभु को गंगा जी के पार ले जाता है। केवट को प्रभु कृपा पूरी मिली है और पूरा पूरा लाभ लिया है-

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड दोहा १०१)

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त अपने 'साकेत' में उस केवट के लिए यह सम्मान देते हैं-

प्रभु पद धोकर भक्त आप भी धो गया।

कर चरणामृत पान अमर वह हो गया।।

अब प्रभु श्रीराम सीता, लक्ष्मण और निषादराज गुह के साथ नाव पर से उतर कर गंगा जी के रेत में खड़े हो गये हैं। केवट नाव पर से उतरकर प्रभु को दंडवत करता है, प्रभु को संकोच होता है कि केवट को कुछ नहीं दिया है- उसे अपनी मजदूरी मिलनी चाहिए-

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता।

सीय राम गुह लखन समेता।।

केवट उतरि दंडवत कीन्हा।

प्रभुहिं सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०२(१-२))

दाम्पत्य-जीवन में किसी को किसी चीज का अभाव न अखरे-हमें माँ सीता से प्रेरणा लेनी है। प्रभु को कुछ देना है, सीता जी जान जाती हैं और प्रसन्नचित्त से अपनी रत्नजड़ित अँगूठी उतार देती हैं। कृपालु प्रभु अँगूठी को उतराई के रूप में लेने को कहते हैं लेकिन केवट अकुलाकर प्रभु के श्रीचरणों को पकड़ लेता है। वह कहता है- "हे प्रभु! आज मैंने आपके श्रीचरण धोकर क्या नहीं पाया- सब कुछ पा लिया और दोष, दुख और दरिद्रता की आग बुझ गई। मैंने बहुत समय से मंजूरी की है, आज विधाता ने पूर्ण

रूपेण मजदूरी अच्छी तरह से दे दी। हे नाथ! हे दयालु! आपकी कृपा से मुझे कुछ नहीं चाहिए। लौटते समय आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं सिर चढ़ाकर लूँगा।"

पिय हिय की सिय जाननि हारी।

मनि मुदरी मन मुदित उतारी।।

कहेउ कृपाल लेहु उतराई।

केवट चरन गहे अकुलाई।।

नाथ आजु मैं काह न पावा।

मिटे दोष दुख दारिद दावा।।

बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी।

आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।।

अब कुछ नाथ न चाहिय मोरे।

दीनदयाल अनुग्रह तोरे।।

फिरती बार मोहि जो देबा।

सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा।।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड १०२(३-८))

लक्ष्मण व सीताजी भी केवट को लेने को कहते हैं लेकिन केवट कुछ भी नहीं लेता। प्रभु धर्म संकट में पड़ गये। आखिर में, करुणा के धाम प्रभु अपनी निर्मल भक्ति का वरदान देकर केवट को विदा करते हैं-

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवट लेइ।

बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ।।

(रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड दोहा १०२)

केवट को प्रभु की निर्मल भक्ति मिल गई है लेकिन उसकी उतराई शेष रही। रामवतार में प्रभु का यह संकोच बना ही रहा। बाल सखा श्रीसुदामा जी के चरणों को धोकर और अपनी द्वारिका से अधिक धन सम्पदा देकर-

देखि सुदामा की दीन दशा,

करुणा करिकै करुणानिधि रोए।

पानी परात को हाथ छुयौ नहिं,

नैनन के जल सों पग धोए।।

□□□

गुरुदेव का जनमदिन

□ डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव

गुरुदेव का जनमदिन है पर्व परम पावन।
संक्रान्ति माघ षट्तिल एकादशी सुहावन॥
गुरुवर का बुद्धि निर्झर
झर झर झरें सरस्वति
उनकी गिरा से झरती
सिया राम प्रेम भक्ति
नित ज्ञान घन बरसता जैसे बरसता सावन।
संक्रान्ति॥
सम्पूर्ण ज्ञानियों में
निज ज्ञान से हैं चर्चित
गुरु सूर्यवंशियों के
उनसे सदैव वन्दित
गुरुवर वसिष्ठ जी को है वन्दना का वन्दन।
संक्रान्ति॥

विकलांगों के हित में
जीवन किया समर्पित
सत्यार्थ में जगद्गुरु
के पद पै वे प्रतिष्ठित
हैं ज्योतिपुञ्ज गुरुवर जगमग है माँ का आँगन।
संक्रान्ति॥
वर्धिष्णु बनें गुरुवर
शुभकामना हमारी
जीवन सदैव सुरभित
केसर की जैसे क्यारी
माँ भारती हैं गर्वित है दिव्य उनका लालन।
संक्रान्ति॥

पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

□ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी

दिनाङ्क	विषय	आयोजक तथा स्थान
०५ फरवरी २००९ से ०९ फरवरी २००९ तक	मानस सम्मेलन सायं २ से ५ बजे	महन्त श्रीरामभूषणदास, श्रीरघुनाथ मंदिर खनेता गोहद, जि०- भिण्ड, म०प्र० फोन- ०७५३९-२८०७२६
११ फरवरी २००९ से १५ फरवरी २००९ तक	दिव्य प्रवचन सायं २ से ५ तक	सैक्टर-१० A रावतुलाराम पार्क गुडगाँव (हरियाणा) मो०- ९८७१५५०५८०
०१ मार्च २००९ से ०९ मार्च २००९ तक	श्रीरामकथा सायं ३ से ६ बजे	श्री सनकादिक देवनारायणदास, देवपत्नम, काठमाण्डू, नेपाल। फोन-०९७७-९७४७०२२००९
१६ मार्च २००९ से २२ मार्च २००९ तक	श्रीमद्भागवतकथा प्रातः ९:३० से १:३० तक	गीताभवन नं० ३ घाट पर स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश (उत्तराखण्ड) आयोजक- श्री नारायण डालमिया

शंख-ध्वनिविज्ञान

□ विद्यावागीश पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

सन्ध्या कर चुकने पर तथा हिन्दुओं के धर्म मन्दिरों में, धर्म कथाओं में शंख का नाद किया जाता है, यह भी रहस्यपूर्ण है। वैज्ञानिकप्रोफेसर जगदीशचन्द्र बसु महोदय ने अपने प्रयोगों से सिद्ध किया है कि— जहां तक शंख की ध्वनि जाती है वहां तक संक्रामक रोगों के अनेक विषाक्त परमाणु स्वयं ही दूर हो जाते हैं, वहां का वायुमण्डल विशुद्ध हो जाता है।

जो लोग हम पर यह आक्षेप करते हैं कि— यह लोग मुँह से हड्डी छूते हैं, इस पर उन्हें जानना चाहिए कि— जैसे चमड़ा अशुद्ध होने पर भी प्रतिपक्षी भी मृगचर्मादिरूप में उसका उपयोग लेते हैं, और उसे शुद्ध मानते हैं। जैसे देवमन्दिर में चमड़े के बने होने से जूता ले जाने का निषेध होने पर भी चमड़े का मृदंग या ढोल वहां ले जाया जाता है। जैसे बाल अशुद्ध होने पर भी प्रतिपक्षी लोगों से शिखा (चोटी) रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं, चमरी की पूछ चमर मन्दिरों में, गुरुद्वारों वा राजभवनों में झुलते हैं, और उन्हें शुद्ध माना जाता है, जैसे पुरीष अशुद्ध होने पर भी प्रतिपक्षी भी गोपुरीष (गोबर) रूप में उसका उपयोग करते हैं, और उसे शुद्ध मानते हैं, मल अशुद्ध होने पर भी भस्म रूप से प्रयुक्त की जाती है, क्योंकि— भस्म अग्नि की मल होती है, जैसे कि कृष्णयजुर्वेद में कहा है— ‘अग्नेर्भस्मासि, अग्नेः पुरीषमसि’ (तै० सं० १/२/१२ (३)) जैसे दांत अशुद्ध होने पर भी, अस्थिमय होने पर भी, गजदन्तरूप में प्रतिपक्षियों से भी उपयुक्त किये जाते हैं, बल्कि अपने मुख में भी लगाये जाते हैं, अपनी स्त्रियों के हाथ में चूड़ी रूप में पहिनाये जाते हैं। जैसे मूत्र अशुद्ध होने पर भी प्रतिपक्षी भी गोमूत्रादिरूप में उसका प्रयोग करते हैं, और उसे

शुद्ध मानते हैं। जैसे कि— कृमि-विशेष के मुख की लार से उत्पन्न भी रेशम को पवित्र माना जाता है। जैसे वमन (उल्टी) अशुद्ध होती हुई भी मधु-रूप में प्रतिपक्षियों से प्रयुक्त की जाती हैं, और यज्ञ में भी उसका प्रयोग किया जाता है, जैसे हड्डीरूप कौडियाँ भी सभी से प्रयुक्त की जाती हैं, इसी तरह अस्थि अशुद्ध होती हुई भी शंख आदि रूप में उसका प्रयोग होता है, और शंख को शुद्ध माना जाता है। यह सब सामान्य-शास्त्र के अपवाद हैं।

यदि कहा जावे कि— ‘यह तो आपकी इच्छा हुई, जिसे चाहे शुद्ध बना दें, जिसे अशुद्ध’। इस पर यह जानना चाहिए कि— सामान्य-शास्त्र के अपवाद सर्वत्र हुआ करते हैं, और वे स्वाभाविक होते हैं, उन्हें वैसा ही मानना पड़ता है। आक्षेपता लोग जिन्हें हड्डी एवं अस्पृश्य कहते हैं, उनके मुख में भी क्या हड्डी जुड़ी हुई नहीं जिन्हें दाँत कहते हैं? क्या आप उन्हें निकलवा डालते हैं आपके शरीर में रक्त भी है, हड्डियाँ भी हैं, उन्हें भी अस्पृश्य होने से निकलवा डालेंगे? शुक्र अस्पृश्य है, उससे बने हुए पुत्र को भी गिरा देंगे क्या? यदि नहीं, तो स्पष्ट हो जाता है कि जिसके बिना निर्वाह न हो, या जिसमें कई गुणविशेष अनुभूत हों, उसकी अस्पृश्यता बाधित हो जाती है, और उसे अपवादस्थल माना जाता है। जब अनिर्वाहस्थल में भी अस्पृश्यता नहीं मानी जाती, तब जहां हमारे विज्ञानज्ञाता प्राचीन ऋषि-मुनियों ने विशिष्ट वस्तुओं में वैज्ञानिक-दृष्टि से शुद्धता देखी, वहाँ भला अस्पृश्यता या अशुद्धता या त्याज्यता कैसे हो सकती है? इस प्रकार सभी सामान्य-शास्त्र के अपवादों में जानना चाहिये।

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक नियमों से भी यही प्रतीत होता है कि अस्पृश्यता बलाबल पर निर्भर है। जिस वस्तु में वैज्ञानिक गुणों का बल अधिक होता है, वहाँ अस्पृश्यता प्रवृत्त नहीं होती। जैसे सायंकालीन वायु अस्पृश्य होती है, वह सम्पूर्ण वृक्षों को दूषित कर देती है, परन्तु अधिक बल रखने वाले पीपल और बड़ आदि वृक्ष, तुलसी आदि पौधे उस वायु से दूषित नहीं किये जा सकते। पूर्ववत् वे शुद्ध ही रहते हैं। अवश्य इनमें विशिष्ट शक्ति हुआ करती है; जो अशुद्ध वायु को बलवान नहीं होने देती। तभी हमारे शास्त्रों में तुलसी, पीपल आदि वृक्षों को उत्तम वृक्ष माना गया है, सायं वा रात में भी इनके पास रहने से हमारी कोई हानि नहीं होती।

इस प्रकार ऋषि-मुनियों ने मृगचर्म आदि तथा ऊन के वस्त्र, रेशमी कपड़ा आदि और गजदन्त एवं शङ्ख आदि को भी पवित्र कहा है। इस प्रकार की विशिष्ट शक्ति को हमारे वैज्ञानिक मूर्धन्य पूर्वज जानते थे; तभी उन्होंने एतदादि की व्यवहार्यता बताई है।

अब शङ्ख के वैज्ञानिक गुणों पर विचार करना चाहिए। पहले हम वैज्ञानिक श्रीजगदीशचन्द्र बसु का इस विषय में अभिमत बता चुके हैं। धार्मिक लोगों में प्रसिद्ध है कि प्रातः-सायं शङ्ख बजाने से भूत हट जाते हैं- 'शङ्ख बाजे, भूत भागे'। उनमें कीटाणु भी सूक्ष्म-भूतों में माने जाते हैं। दोनों सन्ध्याओं में तम और प्रकाश के मिश्रण से रोग के कीटाणु पैदा होते हैं; और इधर-उधर फैल जाते हैं; और वे वायुमण्डल को अशुद्ध कर दिया करते हैं। तब शंखनाद कीटाणुओं का दूर करने वाला होने से स्वयं ही आरोग्यकारक सिद्ध हुआ; क्योंकि कीटाणु आरोग्य के विघातक हुआ करते हैं। संक्रामक रोगों में शङ्ख विशेष-उपयोगी होता है।

आजकल के वैज्ञानिक जिस नवीनता की गवेषणा करते हैं, आज के भारतीय उसमें बहुत हैरान हो जाते हैं। स्वयं कुछ भी नहीं करते, और न प्राचीन मुनियों के वचनों पर विश्वास या श्रद्धा करते हैं। यह शंख मूकों (गूंगों) को भी भाषणशक्ति देता है। यदि गूंगे प्रतिदिन तीन-चार बार शंख बजावें; और उन्हें बोलने का अभ्यास कराया जाय, शंख में डाला हुआ जल उन्हें पिलाया जाया करे, शंखभस्म उन्हें खिलाई जाए; और छोटे-शंखों की माला उन्हें पहराई जावे; तो वे मूक भी बोलने में कुछ सहायता प्राप्त कर लेते हैं। गण्डमाला-रोग में शंख घिसकर लगाने से लाभ होता है। क्षय, कृशता, विष तथा नेत्र-रोगों पर शंख को लाभदायी कहा गया है। शंख शूल, गुल्म, संग्रहणी, दन्तरोग, आँख का फूला और फोड़ों का नाश करता है।

इसी कारण प्राचीन समय में बच्चों की ग्रीवा में छोटे-छोटे शंखों को धागे में पिरोकर पहिनाते थे। इससे बच्चे शीघ्र बोल सकते थे, दृष्टिदोष भी उन्हें नहीं होता था। महाराष्ट्र में शंख का जल बच्चों को पिलाते हैं, इससे कई उनके रोग दूर हो जाते हैं। प्राचीन-शास्त्रों में शंख को इसीलिए रत्न कहा जाता है। समुद्र से जब चौदह रत्न निकले थे; उनमें शंख भी था।

सब आगमों के मूल वेद में भी शंख का लाभ आया है। जैसे कि- 'शंखेन हत्वा रक्षांसि' (अथर्वसं० ४/१०/२) यहाँ शंख से सूक्ष्म राक्षसों का नाश कहा है। सन्ध्या के बाद जो कि शंख बजाया जाता है, इससे भूत-प्रेत-राक्षसादि का नाश होता है- इस सनातनधर्मियों की प्रसिद्धि को यहाँ वेद का समर्थन प्राप्त है। प्रातः शुद्ध वायु में शंख बजाने से श्वासों की शुद्धता, और छाती की विशालता, और फेफड़ों की शुद्धि होती है, जिससे भीतर निरन्तर श्वासों की शुद्धि होने से राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं होते, ऐसा वैज्ञानिकों

का कथन है। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वा० दयानन्द जी ने अपने यजुर्वेद भाष्य में 'अवरस्पराय शंखधम्म' (३०/१९) 'नीचे के शत्रुओं के अर्थ शंख बजाने वाले को उत्पन्न वा प्रकट कीजिए' यह लिखकर शंख बजाने की वैदिकता सिद्ध की है। उनके अनुयायी इधर दृष्टि डालें-यहाँ शत्रु रोग कीटाणु भी विवक्षित हो सकते हैं।

'समुद्राद् अधिजज्ञिषे' (अथर्व० ४/१०/२) यहाँ शंख की समुद्र से उत्पत्ति बतलाई है। 'शंखो नो विश्वभेषजः कृशनः पातु अंहसः' (अथर्व० ४/१०/३) यहाँ शंख को सब रोगों का औषधस्वरूप, और पाप या दुःख को दूर करने वाला कहा है। 'दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः। स नो हिरण्यजः शंख आयुष्प्रतरणो मणिः' (अ० ४/१०/४) यहाँ शंख को आयु देने वाला भी माना गया है। 'तत् ते बध्नामि आयुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय' (अ० ४/१०/७) यहाँ शंख को दीर्घ-आयु, बल एवं तेज देने वाला बताया है। जब वेद शंख की इस प्रकार की महिमा बताता है तब वैदिकम्मन्य इस पर आक्षेप कैसे कर सकते हैं? बृहदारण्यक उपनिषद् में तथा अन्य श्रौतग्रन्थों में भी शंख के पर्याप्त प्रसंग हैं। शंख बजाने के साथ 'कौशिकसूत्र' में आयुवृद्धि के लिए बालक के शरीर पर अभिमन्त्रित शंख बांधने का भी विधान है। नक्षत्रकल्प (१०/२) में शंख को पापहारी रक्षोघ्न, महौषध तथा दीर्घायुःप्रद बताया गया है। उसकी महत्ता इसी से सूचित होती है कि- भगवान् विष्णु उसे नित्य धारण करते हैं।

सनातन धर्म के देवमन्दिरों में, मठों में, संस्थाओं में, भजन मण्डलियों में, साधुओं की कुटियों में, कथाओं में, पूजा में, जप-पाठों में मांगलिक-उत्सवों में, शंख का पवित्र नाद भारत के घर-घर में होता है, और होता था। कुरुक्षेत्र-युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण ने

पाञ्चजन्य नामक शंख बजाया था, युधिष्ठिर ने अनन्त विजय, भीमसेन ने पौण्ड्र, अर्जुन ने देवदत्त, नकुल ने सुघोष, सहदेव ने मणिपुष्पक शंख बजाया। (गीता १/१५-१६)। उससे शत्रुओं के हृदय फट गये। इस प्रकार इसके बजाने में प्राचीनता भी सिद्ध हुई। इसकी श्रेष्ठता होने से ही भगवान् की आरती के समय शंख का जल भक्तों पर डाला जाता है। यूरोपीय विज्ञानवेत्ताओं ने भी शंख में मनुष्य हितकारिणी विद्युत् मानी है।

आयुर्वेद में भी शंख की अपूर्व शक्ति का वर्णन है। शंखद्रव के सेवन करने से गुल्म, ताप, तिल्ली, मूत्रकृच्छ आदि रोग दूर हो जाते हैं। शंखभस्म से पत्थरी, पीलियायन आदि रोग हट जाते हैं। इसी के योग से वैद्य लोग बहुत सी दिव्य औषधियां तैयार करते हैं, लाभ प्राप्त करते तथा कराते हैं। यदि शंख में जल या गंगाजल सिद्ध करके पिलाया जाया करे, तो कीटाणुजनित सभी रोग दूर हो जाते हैं। इसमें विशेष खर्च भी नहीं पड़ता। इसमें विविध लाभों को देखकर प्राचीनकाल में कुमारियां भी अपने बाहु में शंख की चूड़ियां पहिरती थीं, 'सांख्यदर्शन' में इसका संकेत आया है- 'बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशं-खवत्' (४/९) इसका भाष्य यह है- 'यथा कुमारी हस्तशंखानामन्योन्यसंगेन झणत्कारो भवतीत्यर्थः'। यदि हड्डी की भांति शंख की अपवित्रता होती, तो प्राचीनकाल में इसका उपयोग कैसे होता? गीता और सांख्यदर्शनादि ने उसका संकेत कैसे किया? तब 'शंख यह हड्डीमात्र है, उसे सनातनधर्मी मुख से क्यों लगाते हैं? उसका बजाना पोपलीलामात्र है, यह कहते हुए आक्षेप्ता वैदिक-ज्ञान-शून्य तथा विज्ञान के ककहरे को भी न जानने वाले सिद्ध हुए। यह 'आलोक' पाठकों ने अनुभूत किया होगा।

□□□

श्रीमद्भागवत कथा (श्रीरामेश्वर धाम)

□ प्रस्तुति- आचार्य दिवाकर शर्मा एवं डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'

दिनांक १७-१-०९ माघ कृष्ण सप्तमी शनिवार को प्रातः ८ बजे श्रीमद्भागवत कथा की शोभायात्रा श्री रामेश्वर मन्दिर रामेश्वरम् से आरम्भ हुई। यहाँ भगवान शिव का नाम 'रामनाथ स्वामि' है। मन्दिर से ही परमपूज्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज एक सुसज्जित रथ में विराजमान होकर चल रहे थे। उनकी श्रीचरणों में (रथ में ही) मुख्य यजमान श्री राजेन्द्र गुप्ता एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला देवी बैठी हुई थीं। आगे आगे ढोल नगाड़ों की ध्वनि के साथ भारत के विभिन्न प्रदेशों से पधारे हुए सहस्रों भक्तजन कीर्तन और नृत्य करते हुए चल रहे थे। क्योंकि आज ही श्रीमद्जगद्गुरु आद्यरामानन्दाचार्य का जन्म दिवस था अतः पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने कहा कि आज मैं स्वयं श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य भगवान की पादुकाओं का पूजन करूँगा। पूजन करने के पश्चात् गुरुदेव ने श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी महाराज की पादुकाओं को सश्रद्ध शिर पर धारण किया भक्तजनों ने श्रीमदाद्य रामानन्दाचार्य का जय जयकार किया। तदनन्तर मुख्य यजमान श्री राजेन्द्रगुप्ता एवं उनकी धर्मपत्नी ने पूज्यपाद जगद्गुरु जी का पूजन किया। श्री पं० चन्ददत्त सुवेदी ने मन्त्रोच्चार करते हुए पूजन का कार्यक्रम सम्पन्न कराया। इसके पश्चात् रामेश्वरम् के प्रतिष्ठित समाजसेवी एवं कर्मनिष्ठ श्रीमुरलीधरन जी ने पूज्यपाद जगद्गुरु जी के श्रीचरणों में नमन करके सम्पूर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। जगद्गुरु जी

महाराज ने श्री मुरलीधरन को आशीर्वाद दिया। मुरलीधरन जी के भाषण से पूर्व श्रीराजेन्द्र गुप्ता ने परमपूज्य गुरुदेव एवं समस्त आगत सज्जनों का स्वागत करते हुए गुरुमहिमा पर प्रकाश डाला। इसके बाद परमपूज्य जगद्गुरु जी महाराज ने अपना प्रवचन आरम्भ किया।

श्रीमद्राघवो विजयतेतराम्, श्री रामेश्वरो जयति।
तथा कीर्तन आरम्भ कराया-

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ। हरि चरणारविन्द उर धरौ।
हरि की कथा होत है जहाँ गंगाहूँ चलि आवै तहाँ।
गंगा सिन्धु सरस्वति आवै गोदावरी विलम्ब न लावै।
सभी तीर्थ का वासा तहाँ। सूर हरि कथा होवे जहाँ।

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि,
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपाल वसुपाल किरीटजुष्ट,
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये।

नमस्यामः शुकाचार्य वासिष्ठं व्याससम्भवम्।
पिबामो यत्कथाम्भोजच्युतं भागवतामृतम्॥
शुकाचार्य के पद कमल पुनि पुनि करौ प्रणाम।
श्रीमद् भागवती कथा सुनसु सुजन अभिराम।
राधे गोविन्द गोविन्द राधे राधे राधे गोविन्द गोविन्द राधे।
राधे राधे गोविन्द गोविन्द राधे राधे राधे गोविन्द गोविन्द राधे।

परम श्रद्धेय गुरुवर्य ने कथा आरम्भ करते हुए कहा कि हमारे देश में बड़े बड़े उद्योगपति हैं पर श्रीराजेन्द्र गुप्ता मन से उद्योगपति हैं। हमारा भारत एक है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक सबकी राष्ट्रभाषा

हिन्दी है पर यहाँ के लोग अंग्रेजी बोलते हैं परन्तु हिन्दी नहीं बोलते। हमें हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान पर गर्व करना चाहिए। उत्तर में बदरीनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम् पूर्व में श्रीजगन्नाथ और पश्चिम में श्री द्वारकापुरी चारों धाम भगवान के चार ज्योतिर्लिंग हैं। श्रीमद् वाल्मीकिरामायण में महर्षि वाल्मीकि जी ने भगवान श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा-

समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।

इस प्रकार समुद्र से हिमालय पर्यन्त भारत की सीमा का वर्णन किया। आज हम भगवान शंकर के चरणों में बैठकर भगवान श्रीराम और भगवान शंकर दोनों को एक दूसरे से छोटा समझते हैं। परन्तु आद्यरामानन्दाचार्य भगवान ने दोनों को जोड़ने का प्रयास किया। कुछ लोग रावण के वध को लेकर दुष्प्रचार करते हैं परन्तु सत्य यह है कि भगवान श्रीराम ने आतंकवाद के सरगने रावण का वध करके आतंकवाद का नाश किया। शरणागति का शंखनाद भी यहीं से किया गया।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

शरणागत की रक्षा करनी चाहिए। श्रीरामेश्वर भारत के नवें ज्योतिर्लिंग हैं। भगवान श्रीराम का अवतरण नवमी को हुआ। उन्हें नवधाभक्ति प्रिय है अतः नवे ज्योतिर्लिंग पर शिवलिंग की स्थापना की। भगवान श्रीराम के सेतु पर पुल बाँधकर सागर पार करने का भाव यह है कि वैदिक धर्म के सेतु पर आस्था रखकर ही संसार सागर को पार करना ही मानव के लिए कल्याणकारी है। गोस्वामी जी महाराज ने भी यहाँ की धरती को परमरम्य कहा है और इस

भूमि की महिमा को अनुपम बताया है। भगवान श्रीराम कहते हैं-

करिहउँ इहाँ शम्भु स्थापना।

मोरे हृदय परम कल्पना॥

अर्थात् मैं इस भूमि पर शिवलिंग की स्थापना करूँगा। भगवान श्रीराम ने हनुमान जी को काशी से शिवलिंग लाने को कहा। हनुमान जी को आने में विलम्ब होता देख ऋषियों ने कहा भगवन्! स्थापना का मुहूर्त हो रहा है कृपया विलम्ब न हो तब भगवान ने बालुका का शिवलिंग स्थापित किया। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान पृथ्वी से जुड़े हैं। हनुमान जी द्वारा लाया गया शिवलिंग भी पास में ही स्थापित किया गया। गुरुदेव ने भगवान रामेश्वर का कीर्तन कराया-
नमः शिवाय ओं नमः शिवाय, हर हर शंकर रामेश्वराय।
रामेश्वराय शिव रामेश्वराय, गिरिजाशंकर रामेश्वराय।
रामप्रियंकर रामेश्वराय गौरीशंकर रामेश्वराय।
रघुवर सुखकर रामेश्वराय परमेश्वराय ओं रामेश्वराय॥

सन्त शिरोमणि गोस्वामी जी महाराज ने मानस जी में लिखा-

लिंगं थापि विधिवत् करि पूजा।

शिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥

जे रामेश्वर दर्शन करिहैं।

ते तनु तजि मम लोक सिधरिहैं॥

भगवान श्रीराम ने इनका नाम रामेश्वर करते हुए कहा- रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः अर्थात् राम के ईश्वर रामेश्वर। तुरन्त शिवलिंग से नाद निकला रामः ईश्वरः यस्य सः रामेश्वरः अर्थात् राम जिनके ईश्वर हैं वही रामेश्वर हैं। प्रभु श्रीराम कहते हैं-

मम कृत सेतु जो दर्शन करिहैं।

ते बिनु श्रम भवसागर तरिहैं।।

आज भी वह सेतु है। सरकार ने तुडवाना चाहा पर वह नहीं टूटा। इसी रामसेतु के कारण सुनामी की लहरें यहाँ तक नहीं आई और तमिलनाडु सुरक्षित रह सका। भगवान श्रीराम भारत के कण कण में बसे हैं यह हमारे देश के कर्णधारों को अच्छी तरह समझ लेना और मान लेना चाहिए। सरकार विदेश से थोरियम आयात करने की तो सोचती है जबकि रामसेतु से २१ प्रतिशत थोरियम प्राप्त हो सकता है। श्रीमद्भागवत को पुराणतिलक और वैष्णवों का धन कहा गया है—
श्रीमद्भगवतं पुराणतिलकं यद् वैष्णवानां धनम्।

भगवान शंकर परम वैष्णव हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा भी गया है—

वैष्णवानां यथा शम्भुः

शिव जी जैसा तो वैष्णव ही नहीं हुआ। समुद्र मंथन से जो विष निकला उससे देवता और राक्षसों के प्राण संकट में हो गये सारा संसार विष के प्रभाव से जलने लगा तो भगवान शंकर ने ही 'राम' कहकर विष पान किया। पुष्यदन्ताचार्य ने शिवमहिम्नस्तोत्र में लिखा—

अकाण्ड ब्रह्माण्ड क्षयचकित देवासुर कृपा विधेयस्यासीद् यस्त्रिनयन विषं संहतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो विकारोऽपि श्लाघ्यः भुवनभयभंगव्यसनिनः।।

इतना बड़ा वैष्णव कौन होगा। भगवान शिव वैष्णवचक्रवर्ती हैं। भक्त नरसी मेहता ने कहा—
वैष्णव जन तो ते ने कहिए जे पीर पराई जारे रे।
परदुःखे उपकार करे तोय मन अभिमान न माने रे।।

श्रीमद् भागवत पर सबसे बड़ा अधिकार शिव जी का है। क्योंकि भागवत को वैष्णवों का धन कहा गया है। गीता जी और रामायण मेरी अन्दर की आँखें हैं। मैं दृष्टिबाधित नहीं हूँ। यह तो आपको चकमा दे रहा हूँ। गीता जी और रामायण जी मेरे उड़ने के दो पंख हैं। जिसके गले में तुलसीमाला है, शालग्राम है, ऊर्ध्वपुण्ड्र है वही परमवैष्णव है। रामेश्वर जी क्षमा करें उनके दिये धन से मैं वैष्णवधर्म चर्चा करता हूँ। यह धन—

न चौरहार्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।

भारतीय धर्म में रूप का मूल्य नहीं है गुणों का मूल्य है—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

कामदेव सौन्दर्य का देवता है पर वही शिव जी ने तीसरे नेत्र से भस्म कर दिया।

तब शिव तीसर नेत्र उधारा।

चितवत काम भयउ जरि खारा।।

उन्हीं शिव जी ने भगवान श्रीराम को पन्द्रह नेत्रों से निहारा पर भगवान राम का एक रोम भी नहीं जला। गोस्वामी जी लिखते हैं—

राम रूप राकेश निहारी।

बढी बीचि पुलकावलि भारी।।

भगवान शिव श्रीराम के रूप को निहार कर प्रेमाश्रु बहाते रहे। भागवत उनका धन है। द्रव्य और धन में अन्तर होता है। जिसे प्राप्त कर किसी प्रकार के दूसरे धन की इच्छा न रह जाय वह धन है। भागवत में भगवत्प्रेम ही सच्चा धन है उसे पाकर किसी अन्य प्रकार के धन की इच्छा नहीं रहती—

सच्चिदानन्दरूपाय हरये परमात्मने।

तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः।।

मंगलाचरण में कहे गये इस श्लोक में वयम् का अर्थ है हम सब वक्ता और श्रोता नमन करते हैं। वे भगवान श्रीकृष्ण कैसे हैं? जिनका रूप 'सत्, चित् आनन्दमय है सत् जिसका कभी नाश न हो, चित् - जिसमें अज्ञान न आये जहाँ ज्ञान ही ज्ञान हो, आनन्द- जहाँ अनुकूलता प्रतिकूलता का बोध न हो आनन्द ही आनन्द हो वे ही सच्चिदानन्द रूप श्रीकृष्ण भगवान हैं।

२१ जनवरी २००९ षट्तिला एकादशी का पावन दिवस श्रीराघव परिवार के सदस्यों के लिए इसीलिए बहुत महत्वपूर्ण था कि श्रीराघवपरिवार के संरक्षक एवं परमाराध्य गुरुदेव जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज का ६० वाँ जन्मजयन्ती महोत्सव आज ही मनाया जाना था। अपराह्नकाल में पूज्यपाद आचार्यचरणों के दीर्घायुष्य एवं यशस्वी होने की कामना से सैंकड़ों कथाश्रोताओं ने श्रीसुन्दरकाण्ड का पाठ किया। इधर पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने समुद्र स्नान करके श्रीरामेश्वर भगवान् के मन्दिर में २२ कुण्डों में सानन्द स्नान किया। तदनन्तर श्रीरामेश्वर भगवान् का पूजन अभिषेक आदि कार्य सम्पन्न करके कथापाण्डाल में सायं ७.३० बजे जैसे ही पदार्पण किया, हजारों नर-नारियों ने आपश्री का हार्दिक स्वागत-अभिनन्दन किया। श्रीराघवपरिवार की पूज्या बुआ जी एवं पूज्यपाद जगद्गुरु जी की अग्रजा डा० कुमारी गीतादेवी मिश्रा ने इस समारोह की अध्यक्षता की। जगन्नाथपुरी से पधारे डा० विजयनारायण रामानुजदास श्रीमहन्त कटकीमठ ने पूज्यआचार्यश्री को शाल एवं भगवान् जगन्नाथ जी का भव्यचित्र समर्पित करके प्रणाम किया और अपने सम्बोधन में कहा- “पूज्यपाद आचार्यश्री अध्यात्मजगत की ऐसी

धरोहर हैं जिनकी सभी को आज्ञाएँ मानते हुए इनके संकल्पों में तन मन धन समर्पित करने चाहिए। मैनुपुरी से पधारी श्रीमती प्रस्तरशिला जी की सुस्वरबद्ध कविता ने सभी को आनन्दित किया। गाजियाबाद से श्रीतुलसीपीठ सौरभ के प्रधान सम्पादक आचार्य दिवाकर शर्मा, प्रबन्ध सम्पादक श्रीललिता प्रसाद बड़धवाल ने पूज्यपाद गुरुदेव के दिव्यगुणों का गान किया। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के कलाकार, महान संगीतकार एवं आचार्य चरणों के अनन्यकृपापात्र श्रीभोपाल प्रसाद द्विवेदी (छत्तीसगढ़) ने अपनी सुपुत्री श्रीमती ज्योतिपाण्डेय के साथ दिव्यभावों से भरा गीत जब प्रस्तुत किया तो श्रोता भावुक हो उठे। श्रीतुलसी प्रज्ञाचक्षु उ० मा० विद्यालय चित्रकूट की प्राचार्या एवं प्रतिभा की प्रतिमा आदरणीया नीरुबेन श्रीवैष्णव ने भी मधुरगीत प्रस्तुत किया। श्रीरामेश्वरम् के ही सामाजिक कार्यकर्ता एवं भागवत कथा में श्रीराजेन्द्र गुप्ता जी के अनन्य सहयोगी श्रीमुरलीधरन जी ने पूज्य गुरुदेव को विशिष्ट हार पहनाकर तथा शाल अर्पित करके प्रणाम किया। आचार्य चन्द्रदत्त सुवेदी जी ने पूज्यपाद जगद्गुरु जी की दिव्यता एवं सरलता के बोधक संस्मरण सुनाकर सभी को आनन्दित किया। अन्य जिन महानुभावों ने पूज्यपाद गुरुदेव की समर्चा में भावोद्गार व्यक्त किए उनमें प्रमुख थे- श्रीउदयवीर शर्मा शिकोहाबाद, श्रीमती शुभदा वशिष्ठ ज्वालापुर, श्रीकिशनचन्द्र शर्मा गाजियाबाद, श्रीसुशील जी अग्रवाल कीर्तनिया सहारनपुर, श्रीअनिरुद्धाचार्य जी मन्दसौर (म० प्र०)। समारोह की अध्यक्षता पूज्या बुआ जी ने आशीर्वादात्मक उद्बोधन में कहा- पूज्यपाद जगद्गुरु जी का संकल्प विकलांगों की रात-दिन सेवा करना है। आपश्री ने

निष्ठा विश्वास और प्रेम से विकलांगों की सेवा का संकल्प ले रखा है। साहित्य सेवा, सन्तसेवा, समाज सेवा का आदर्श प्रस्तुत करके आचार्यश्री ने भारतीय आचार्यों के सामर्थ्य को प्रकट किया है। पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आविर्भावकाल की झाँकी का सुन्दर प्रसंग उपस्थित करते हुए जैसे ही रात्रि के १० बजकर ३४ मिनट हुए, हर्ष ध्वनि से सारा पाण्डाल गूँज उठा। तालियों की गड़गड़ाहट एवं जयघोषों के स्वर से समारोह दिव्य हो गया। सभी ने भगवान सीताराम जी से पूज्यपाद आचार्यश्री के स्वस्थ एवं प्रसन्न दीर्घायुष्य की प्रार्थना की मञ्च संचालन गुरुवर चरणानुरागी डॉ० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' किया।

सेनाचार्य जी नियुक्त

इस विशाल कार्यक्रम में मन्दसौर (म० प्र०) की श्रीसेनाचार्य जी की गद्दी पर श्रीअनिरुद्धाचार्य जी को पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने नियुक्त किया। श्रीतिलक लगाकर तथा चादर पुष्प माला देकर जब पूज्य जगद्गुरु जी ने अनिरुद्धाचार्य जी को आशीर्वाद दिया तब सभी दर्शकों ने समर्थन की तालियाँ बजाईं। नवनियुक्त सेनाचार्य जी ने भी पूज्यपाद जगद्गुरु जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए श्रीराघवपरिवार को आश्वासन दिया कि मैं सनातनधर्म की अहर्निश सेवा करूँगा और पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा का सदैव पालन करूँगा। ज्ञातव्य है कि साकेतवासी अनुरागी बापू (सेनाचार्य श्रीरामकुमाराचार्य जी महाराज) के सुपुत्र हैं श्रीअनिरुद्धाचार्य जी महाराज।

मेरी सेवा की नौकरी चलती रहे

श्रीरामेश्वरमधाम में समायोजित इस श्रीमद्भागवत् कथा के मुख्य यजमान श्रीराजेन्द्र प्रसाद गुप्ता (दिल्ली)

ने कथा विश्राम के दिन पूज्यपाद जगद्गुरु जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए भावुक स्वर में कहा— भगवान ने पूज्यपाद गुरुदेव की सेवा करने की मुझे आज्ञा दी है। अर्थात् मेरी गुरुदेव के यहाँ सेवा करने की नौकरी लग गई है आप सबसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप सब भगवान् से प्रार्थना करें कि मेरी यह नौकरी आजीवन चलती रहे। कार्य की व्यस्तता के कारण मैंने किन्हीं महानुभावों पर क्रोध भी किया है मैं उनके श्रीचरणों में हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ। आप यहाँ से क्रोध विरोध न ले जाएँ अपितु मेरा अनुरोध है कि यहाँ से भगवत्प्रेम का बोध करके ले जाएँ। सबके नयनों में आनन्दाश्रु थे ऐसे गुरुवर चरण कमल के मधुकर को देखकर। इस धाम में धन्य हैं भक्ति भागीरथी के भगीरथ पूज्यपाद जगद्गुरु जी, साधुवाद उन सभी सुधी श्रोताओं को जिन्होंने ऐसी ही दिव्यकथा आगामी पुरुषोत्तम मास में द्वारका में सम्पन्न होने का शुभसमाचार एवं आमन्त्रण प्राप्त किया। भगवान् दीर्घायुष्य प्रदान करें ऐसे हमारे गुरुभाई श्रीराजेन्द्र प्रसाद गुप्ता (दिल्ली) जी को जिन्होंने अपना तन मन धन और जीवन धन्य कर लिया भक्तों की सेवा करके, गुरुदेव की आज्ञापालन करके और भगवान् की कृपावृष्टि प्राप्त करके। इस कथा में जिनका अनन्य सहयोग रहा। उनमें प्रमुख थे— श्री नूनाराम अग्रवाल, श्रीहरीश बंसल, श्री पूरनचन्द जैन, श्री बिहारीलाल जी , श्री राजकुमार जी, श्री आचार्य चन्द्रदत्त सुवेदी जी तथा श्री मुरलीधरन जी। सभी के प्रति सभी ने पुनर्दर्शनाय नमोराघवाय कहकर अपने अपने गन्तव्य को प्रस्थान किया।

□□□

व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

माघ मास शुक्ल पक्ष/सूर्य उत्तरायण शिशिर ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
एकादशी / द्वादशी	शुक्रवार	मृगशिरा	6 फरवरी	जया एकादशी व्रत (वैष्णव), द्वादशी तिथि का क्षय
त्रयोदशी	शनिवार	आर्द्रा / पुनर्वसु	7 फरवरी	शनि प्रदोष व्रत
चतुर्दशी	रविवार	पुष्य	8 फरवरी	—
पूर्णिमा	सोमवार	आश्लेषा	9 फरवरी	सत्यनारायण व्रत सन्त रविदास जयन्ती माघी पूर्णिमा

फाल्गुन कृष्णपक्ष /सूर्य उत्तरायण, बसन्त ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	मंगलवार	मघा	10 फरवरी	—
द्वितीया	बुधवार	पू०फा०	11 फरवरी	—
तृतीया	गुरुवार	उ०फा०	12 फरवरी	श्रीगणेश चतुर्थी व्रत संक्रान्ति सूर्य कुम्भ में
चतुर्थी	शुक्रवार	हस्त	13 फरवरी	—
पंचमी	शनिवार	चित्रा	14 फरवरी	—
षष्ठी	रविवार	स्वाति	15 फरवरी	—
सप्तमी	सोमवार	विशाखा	16 फरवरी	कालाष्टमी
अष्टमी	मंगलवार	अनुराधा	17 फरवरी	—
नवमी	बुधवार	ज्येष्ठा	18 फरवरी	—
दशमी	गुरुवार	मूल	19 फरवरी	—
एकादशी	शुक्रवार	मूल	20 फरवरी	विजया एकादशी व्रत (सबका)
द्वादशी	शनिवार	पू०षा०	21 फरवरी	—
त्रयोदशी	रविवार	उ०षा०	22 फरवरी	प्रदोष व्रत
चतुर्दशी	सोमवार	श्रवण	23 फरवरी	श्रीमहाशिवरात्रि व्रत रुद्राभिषेक
अमावस्या	मंगलवार	धनिष्ठा	24 फरवरी	पंचक प्रारम्भ 6/54 प्रातः से
अमावस्या	बुधवार	शतभिषा	25 फरवरी	अमावस्या तिथि की वृद्धि

फाल्गुन शुक्ल पक्ष/सूर्य उत्तरायण, बसन्त ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	गुरुवार	पू०भा०	26 फरवरी	चन्द्रदर्शनम्
द्वितीया	शुक्रवार	उ०भा०	27 फरवरी	फुलैरा दूज श्रीरामकृष्णपरमहंस जयन्ती
तृतीया	शनिवार	रेवती	28 फरवरी	पंचक समाप्त रात 10/24 श्रीगणेश चतुर्थी व्रत
चतुर्थी	शनिवार	—	28 फरवरी	चतुर्थी तिथि का क्षय
पंचमी	रविवार	अश्विनी	1 मार्च	—
षष्ठी	सोमवार	भरणी	2 मार्च	—
सप्तमी	मंगलवार	कृतिका	3 मार्च	—
अष्टमी	बुधवार	रोहिणी	4 मार्च	दुगाष्टमी-होलाष्टक प्रारम्भ
नवमी	गुरुवार	मृगशिरा	5 मार्च	बरसाने की होली
दशमी	शुक्रवार	आर्द्रा	6 मार्च	नन्दगाँव की होली
एकादशी	शनिवार	पुनर्वसु	7 मार्च	आमलकी एकादशीव्रत (सबका)